

श्री चैतन्य महाप्रभु

और

उनकी विचारधारा

लेखक

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

सम्पादक

श्रीमद् भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज

अध्यक्ष-आचार्य

श्री चैतन्य मठ, श्री मायापुर

प्रकाशक

श्री परमानन्द विद्यारत्न

श्री गौड़ीय मठ

२६।ए।१ चेतला सेण्ट्रल रोड

कलकत्ता-२७

हिन्दी रूपान्तरकार

वैष्णवदासानुदास

श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया

विद्याभूषण, विशारद

मूल्य—१)

प्रथम संस्करण ५००० प्रतियाँ

मुद्रक

सुराना प्रिण्टिङ्ग वर्क्स

४०२, अपर चितपुर रोड

कलकत्ता-७



ठाकुर भक्तिविनोद

ग्रन्थकार का परिचय

इस लघु ग्रन्थके प्रणेता श्रील ठाकुर भक्तिविनोद नदिया जिलेके वीरनगर (उला) नामक इतिहास प्रसिद्ध ग्राममें ईस्वी सन् १८३८ के सितम्बर मासकी दूसरी तारीखको इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए। इनका जन्म आन्दूल निवासी राजा कृष्णानन्दके वंशमें हुआ। जनसाधारणके दृष्टिकोणमें वे बंगालके सिविल सर्विसके विख्यात और सुयोग्य अफसरोंमें थे, पर श्री भगवान्के भक्तोंके लिये ठाकुर भक्तिविनोद श्री भगवान्के निजी पार्षद थे। वे श्री भगवान्की इच्छासे, आदेशसे मानव रूपमें इस भूलोकमें अवतीर्ण हुए। विशुद्ध-भक्ति-सरिताके रुके हुए प्रवाहको—उसके अस्वास्थ्यकर जल एवं संचित पंकादि को निष्कासित करके पुनः सुचारु रूपेण प्रवाहित करने, धर्मकी ग्लानिको दूर करके विशुद्ध धर्मका प्रचार करने, साधुओंका परित्राण करते हुए असाधुओंका सक्रिय प्रतिवाद करनेके लिये ही श्री भगवान्के आदेशसे श्री भगवान्की इस स्पष्ट घोषणाके अनुसार कि,

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिभवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

ठाकुर श्रील भक्तिविनोदका इस भूलोकमें लोक कल्याणार्थ आविर्भाव हुआ। उन्होंने श्री भगवान्की इच्छा एवं आदेशका पूर्णतः पालन किया। उन्होंने अपने जीवनमें भक्तिके समस्त उच्चादर्शोंको अक्षरशः अपनाया और श्री भगवान्की विशुद्ध भक्ति और यथार्थ सेवा का आजीवन प्रचार किया। उनके द्वारा किये हुए सत्कर्मोंका निदर्शन इस लघु ग्रन्थमें आप अति संक्षिप्त रूपमें पा सकते हैं। उनके लिखे हुए ग्रन्थ, निबन्ध और प्रकाशित किये हुए मासिक पत्रादि हमारे पर उनकी यथार्थ करुणाके चिरस्थायी जागरूक स्मृति-मन्दिर हैं। उन्होंने अपने जीवनमें विशाल साहित्यका निर्माण किया। हम यहाँ पर उनके द्वारा लिखे गये साहित्यकी सूची मात्र प्रकाशित कर रहे हैं। उनके लिखे हुए ग्रन्थ ये हैं—

- (१) हरिकथा (२) शुम्भ ओ निशुम्भेर सहित आद्या शक्तिर युद्ध (३) पोरियेड, प्रथम भाग (अंग्रेजी काव्य) (४) पोरियेड, द्वितीय भाग (अंग्रेजी काव्य) (५) उड़ीसार मठ (६) विजय ग्राम (७) सन्यासी (८) Our Wants (९) वालिदे रेजिष्ट्री (उर्दू) (१०) Speech on Gautam (११) Speech on Bhagwat. (१२) गर्भस्तोत्र व्याख्या अथवा सम्बन्ध-तत्त्व-चन्द्रिका (१३) Reflection (१४) ठाकुर हरिदासेर समाधि (१५) पुरीर जगन्नाथ मन्दिर औ पुरीर आखड़ा प्रभृति (१६) दत्तकौस्तुभम् (संस्कृत) (१७) दत्तवंशमाला (संस्कृत) (१८) बौद्ध विजय काव्यम् (संस्कृत) (१९) श्रीकृष्णसंहिता (संस्कृत) (२०)

कल्याण कल्पतरु (२१) श्री सज्जनतोषिणी मासिक पत्र । यह पत्र उनके संपादकत्वमें १७ वर्षों तक प्रकाशित हुआ था । (२२) नित्यस्वरूप संस्थापन (२३) श्रीमद्भगवद् गीता (२४) श्री चैतन्य शिक्षामृत (२५) श्री शिक्षाष्टककी संस्कृत टीका (२६) श्रीमनः शिक्षा (२७) श्री भावावलीकी संस्कृत टीका (२८) प्रेम-प्रदीप (२९) श्री विष्णुसहस्रनाम श्रील बलदेव भाष्य सहित (३०) श्रीकृष्ण विजय (३१) श्री चैतन्योपनिषत् (३२) श्री वैष्णव सिद्धान्त माला (३३) श्रीमदाम्नाय सूत्रम् (३४) श्री नवद्वीप धाम माहात्म्य (३५) श्रीमद्भगवद् गीता (श्रील बलदेव विद्या-भूषणकी टीका और बंगलामें विद्वद् रंजन भाष्य सहित) (३६) श्री हरिनाम (३७) श्रीनाम (३८) श्री नाम तत्व (३९) श्री नाम महिमा (४०) श्रीनाम प्रचार (४१) श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा (४२) श्री तत्व विवेक वा श्री सच्चिदानन्दानुभूति (४३) श्री शरणागति (४४) शोकशासन (४५) जैव धर्म (४६) श्री तत्व सूत्रम् (४७) ईशोपनिषत् (वेदाके दीघिति व्याख्या सहित) (४८) श्री तत्व मुक्तावली (४९) श्री चैतन्य चरितामृतेर अमृत प्रवाह भाष्य (५०) श्री गौरांग स्मरण मंगल स्तोत्रम् (५१) Shree Chaitanya Mahaprabhu-His life and precepts. (५२) श्री रामानुज उपदेश व्याख्या (५३) श्री ब्रह्मसंहिता— प्रकाशिनी व्याख्या सहित (५४) श्रीकृष्ण कर्णामृत (५५) श्री उपदेशामृतकी पीयूष वर्षिणी वृत्ति (५६) श्रीमद् भगवद्गीता (माध्व भाष्य प्रकाश) (५७) श्री भगवद् धामामृत (५८) श्री भजना-

मृत (५६) श्री नवद्वीप भाव तरंग (६०) श्री हरिनाम चिन्तामणि (६१) श्री भागवतार्क मरीचिमाला (६२) श्री संकल्प कल्पद्रुम (६३) समग्र श्री पद्मपुराण प्रकाश (६४) श्री भजन रहस्य (६५) सत् क्रियासार दीपिका (६६) श्री चैतन्य शिक्षामृत (परिवर्द्धित) (६७) श्री प्रेमविवर्त (६८) स्वनियम द्वादशकम् आदि ।

ये समस्त ग्रन्थ ठाकुर श्रील भक्तिविनोदने बङ्गाब्द १२१७ से बङ्गाब्द १३१४ तकके दीर्घ ६२ वर्षोंमें लिखे, संपादित किये, प्रकाशित किये । इन ग्रन्थोंके अलावा उन्होंने असंख्य निबन्ध लिखे और सहस्र सहस्र वक्तृतायें दीं । उनका सारा जीवन ही वैष्णव धर्म, वैष्णव साहित्य और विष्णुभक्तिके प्रचार-प्रसारमें ही व्यतीत हुआ । वे भक्तिके साक्षात् प्रतीक ही थे । वे अपने प्रभुके अत्यन्त प्रिय, विश्वासी और आज्ञाकारी सेवक थे । अपने प्रभुके जीवन और उनकी विचारधाराके विषयमें उन्होंने इस ग्रन्थमें जो कुछ लिखा है वह न तो अस्वाभाविक एवं कल्पना-प्रसूत कलमका ही सृजन है और न किसी अपरिपक्व लेखककी भ्रामक रचना है—यह तो श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी अपनी अलौकिक साधना एवं अटूट भक्तिका निदर्शन है । श्री महाप्रभु के जिन विचारोंका इसमें वर्णन किया गया है—उसीके अनुसार उनका जीवन और वचन था । श्री चैतन्य महाप्रभु ही उनके सर्वस्व थे—उनके लिये वे ही हृदय-धन थे और चैतन्य महाप्रभु ही उनकी सारी सम्पत्ति थे ।

श्री चैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्त पुरीमें उनके द्वारा ८ श्लोकों

में वर्णित किये गये हैं। इनको शिक्षाष्टक कहा जाता है। ठाकुर भक्ति विनोदने इन आठ सिद्धान्तोंको अपने निजके जीवनमें पूर्ण रूपसे आचरित किया था।

सन् १८८७ ई० में श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने मन ही मन यह निश्चय किया कि, राजकार्यसे शीघ्र ही छुटकारा लेकर जीवनके शेष भागको यमुनातटवर्ती किसी वनमें भजन करते हुए बिता देना चाहिए। इसी प्रकारका चिंतन करते हुए वे किसी राजकार्यवश ताड़केश्वर गये। वहाँ पर रात्रिमें उन्होंने स्वप्नमें देखा कि, श्री महाप्रभु उनको कह रहे हैं कि, 'तुम वृन्दावन जा रहे हो, तुम्हारे घरके पास श्री नवद्वीपमण्डलमें जो कार्य पड़ा हुआ है, उसका क्या किया?' अपने इस स्वप्नके आख्यानको उन्होंने श्री भक्तिभृङ्ग महाशयको सुनाया। उन्होंने उनको यह परामर्श दिया कि, किसी सरकारी कार्यसे अपनी बदली कृष्णनगर सदरमें करा लो। इस पर उन्होंने अनेक चेष्टा करके कृष्णनगरके डिप्टी मजिस्ट्रेट बाबू राधारमण वसुसे अपने स्थान का परिवर्तन कर कृष्णनगर प्रत्यावर्तन किया।

श्री धाम-मायापुर आविष्कार

कृष्णनगरके कार्यकालमें प्रति रविवारको वर्तमान नवद्वीप शहरमें जाकर ठाकुर भक्तिविनोदने श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भाव-स्थानको नाना प्रकारसे खोजना आरम्भ किया। इसी नवद्वीप शहरमें 'रानीकी धर्मशाला' की छत पर बैठकर हरिनाम करनेके समय एक दिन गंभीर अंधेरी रातमें उत्तरकी तरफ एक

ऊँचे तालवृक्षसे संलग्न अलौकिक पदार्थ और आलोकमय अट्टालिका उनको दिखाई पड़े ? उसके बाद श्रील नरहरि सरकारकी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा, श्रीचैतन्य भागवत एवं कृष्णनगरकी कलकटरी आफिसमें संरक्षित प्राचीन दलीलादि का उन्होंने ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना आरम्भ किया। वल्लाल-दीधी गाँवमें जाकर स्थानीय प्राचीन सज्जनोंसे वार्तालाप करके अनेक पुरानी बातोंसे भी उन्होंने जानकारी प्राप्त की। इसके बाद हरिनाम करते समय दिखाई पड़े स्थान पर वे गये और इसी प्रकार अनेक प्रकारसे खोजबीन करके उन्होंने गंगाके पूर्वीय तटसे अनतिदूर पर अवस्थित श्रीधाम मायापुरमें श्री महाप्रभु के जन्मस्थानको निर्दिष्ट किया। इसी अन्वेषणके परिणाम स्वरूप 'श्री नवद्वीपधाम माहात्म्य' नामक ग्रन्थ लिखा गया। श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने इस प्रकार गंगाके पूर्व तटवर्ती श्री चैतन्य महाप्रभुके जन्मस्थानको यथार्थ रूपमें खोजकर उसका पुनरुद्धार किया। वर्तमान नदियाको ही जिन लोगोंने श्री महा-प्रभुके जन्म स्थानके रूपमें प्रचारित कर रखा था उसकी असत्यताको प्रमाणित कर दिया। वर्तमान नवद्वीप शहर प्राचीन कुलिया या कोलद्वीप मात्र है। यह द्वीप नौ द्वीपोंमें से एक है। नवद्वीपका प्राचीन शहर अत्यन्त समृद्धिशाली और बहुल जनसंकुल था। वह संस्कृत शिक्षाका सबसे बृहत् केन्द्र था। इसकी परिधि ३२ मील थी और यह नौ द्वीपोंके समन्वयसे गठित हुआ था। यथा—

(१) अन्तर्द्वीप (श्री मायापुर) (२) सीमन्त द्वीप (सीमुलिया)
 (३) गोद्रुम द्वीप (गादीगाछा) (४) मध्य द्वीप (माजदीया) (५)
 कोलद्वीप (नवद्वीपका वर्तमान शहर) (६) ऋतुद्वीप (चाम्पा हाटी
 आदि) (७) जह्नुनगर (जाननगर) (८) मोदद्रुमद्वीप (माम
 गाछी) (९) रुद्रद्वीप (शंकरपुर या रुद्रपाड़ा) ।

श्री महाप्रभुके आविर्भाव दिवस फाल्गुनी पूर्णिमाके पहले
 नौ दिनों तक इन नौ द्वीपोंकी परिक्रमाका आयोजन प्रति वर्ष
 किया जाता है। इस अवसर पर भारतवर्षके कोने-कोनेसे
 सहस्रों नरनारी बंगालके बृन्दावन श्रीधाम मायापुरमें आते हैं
 और इस धार्मिक महोत्सवमें सम्मिलित होते हैं ।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद आजीवन श्री महाप्रभुके प्रेम और
 भक्तिके सन्देशका प्रचार करते रहे ।

उनका तिरोभाव सन् १६१४ ई० की २३ जूनको हुआ।
 अपने जीवनका अधिकांश समय उन्होंने भक्तिका रसामृत
 जगत् कल्याणार्थ वितरित करनेमें ही बिताया। आज भी उनके
 द्वारा प्रवाहित भक्तिमन्दाकिनीकी अजस्र धारा श्रद्धालु भक्तों
 को शुद्ध भक्ति तरंगोंमें अवगाहन करा रही है ।

आज हम श्रील ठाकुर भक्तिविनोद द्वारा लिखित 'श्री
 चैतन्य महाप्रभु और उनकी विचारधारा' नामक ग्रन्थको श्री
 चैतन्य ग्रंथावलीके प्रथम पुष्पके रूपमें राष्ट्रभारतीको समर्पित
 कर रहे हैं ।

नमो भक्तिविनोदाय, सच्चिदानन्द नामिने ।

गौरशक्ति स्वरूपाय रूपानुगवराय ते ॥

—श्री भक्तिविलास तीर्थ

श्रीयोगपीठ मन्दिरके मध्य भागमें प्रतिष्ठित



श्रीलक्ष्मीप्रिया, श्रीमहाप्रभु श्रीविष्णुप्रिया

श्री चैतन्य महाप्रभु और उनकी विचारधारा

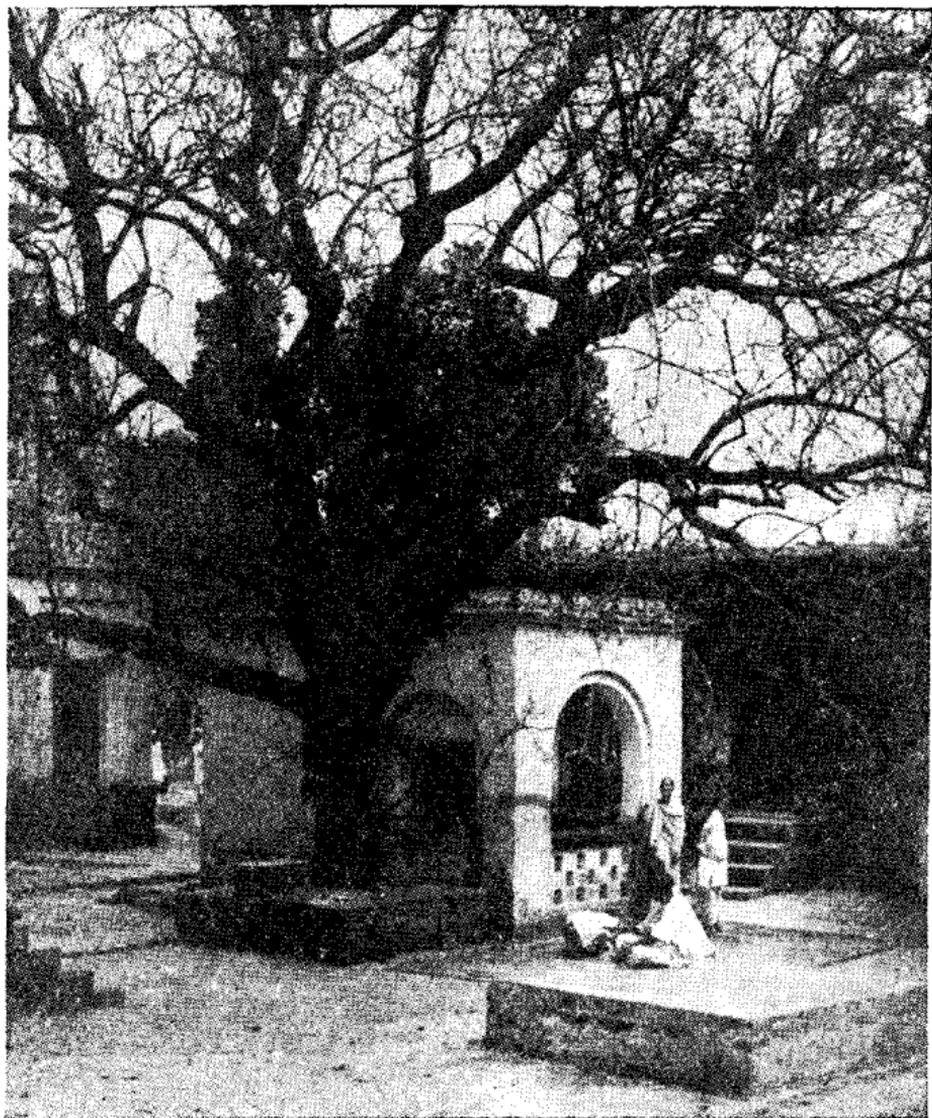
आविर्भाव

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शकाब्द १४०७ में २३ वें फाल्गुन अर्थात् ईस्वी सन् १४८६ की १८ वीं फरवरी को सन्ध्या के समय—जब सूर्य अस्ताचल को जा रहे थे—नदिया शहर के मायापुर में जन्म लिया। उनके जन्म के समय चन्द्रग्रहण की बेला थी। अतः इस अवसर की धार्मिक प्रथा के अनुसार नदियावासी 'हरि बोल' के उच्च घोष के साथ भागीरथी में स्नान करने में तल्लीन थे। उनके पिता जगन्नाथ मिश्र वैदिक मतानुयायी एक गरीब ब्राह्मण थे और उनकी माता शची देवी एक आदर्श महिला थी। इन दोनों का ही परिवार पहले सिलहट में रहता था और वहीं से यह परिवार नवद्वीप में चला आया था। महाप्रभु अत्यन्त सुन्दर शिशु थे अतः शहर की महिलायें कुछ न कुछ हाथ में लिए हुए इस शिशु को देखने आया करती थीं। श्री महाप्रभु के नाना पण्डित नीलाम्बर चक्रवर्ती विख्यात ज्योतिषी थे। उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि, यह शिशु आगे चलकर एक महापुरुष के रूप में संसार के

सामने आवेगा और इसीलिये उन्होंने इस शिशु का नाम विश्वम्भर रखा। उनके सुन्दर सुवर्णकान्तियुक्त वर्ण के कारण पास पड़ोस की महिलाओं ने उनका नाम गौरहरि रखा और उनकी माता ने जन्मस्थान के पास ही नीम वृक्ष होने के कारण उनका नाम निमाई रखा। अत्यन्त सुन्दर होने के कारण ग्राम और आसपास के प्रत्येक स्त्री पुरुष प्रतिदिन उन्हें देखने के लिये आते थे। ज्यों ज्यों वे बड़े होने लगे त्यों-त्यों वे भावुक दिखाई पड़ने लगे। पाँचवें वर्ष के पूर्ण होने पर उनको पाठशाला में अध्ययन के लिये प्रवेश करा दिया गया और उन्होंने अत्यन्त अल्प समय में ही बंगला सीख ली।

श्री चैतन्यका शैशव

श्री चैतन्य के जीवनचरित्र-लेखकों में अधिकांश ने श्री चैतन्य के सम्बन्ध में कितने ही ऐसे कथानकों का उल्लेख किया है जिनसे उनकी अलौकिक शिशु-लीला पर प्रकाश पड़ता है। यह कहा जाता है कि, जब वे बहुत छोटे थे और मां की गोद में खेला करते थे—तब वे निरन्तर रोया करते थे और जब उनकी मा और पड़ोस की स्त्रियाँ 'हरि बोल' का उच्चारण करने लग जाती थी, तब वे चुप हो जाते थे। इस प्रकार घर के भीतर निरन्तर हरि बोल की ध्वनि गूँजा करती थी। यह कथानक श्री महाप्रभु के भावी कार्यक्रम का दिग्दर्शन कराता है। यह भी कहा जाता है कि, एक बार जब उनकी माता ने उनको खाने के लिये मिठाइयाँ दी तो उन्होंने मिठाई खाने के बदले मिट्टी खाना



श्री महाप्रभुकी जन्मकुटी—(श्री योगपीठ) इसी नीम गाछके पास श्री महाप्रभुका आविर्भाव हुआ था । यह गाछ आज प्रायः ५०० वर्षोंसे श्री महाप्रभुके आविर्भावकी स्मृति को अपने अन्तरमें समेटे हुए है ।

आरम्भ कर दिया। जब उनकी माता ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि, मिठाइयाँ और कुड़ तो हैं नहीं—मिट्टी का ही बदला हुआ रूप है—अतः मिठाई न खाकर मैं मिट्टी ही खा लेता हूँ। उनकी माता ने जो पंडित की बेटी और पंडित की गृहिणी थी इसके उत्तर में समझाया कि, प्रत्येक वस्तु अपने अपने विशेष स्वरूप में निर्धारित व्यवहार में ही उपयोग की जाती है। मिट्टी जब घड़े का रूप धारण कर लेती है—तब उसमें जल ही रखा जाता है परन्तु यदि वह ईंट के रूप को धारण करे तो उसमें पानी रखना असम्भव है। इसीलिये मिट्टी जब मिठाई का स्वरूप धारण कर लेती है—तब उसे खाना चाहिये। उसके बदले में मिट्टी नहीं खानी चाहिये। शिशु के हृदय ने मा की बात की सत्यता को स्वीकार कर लिया और उन्होंने मिट्टी खाने के अपराध को स्वीकार किया एवं भविष्य में ऐसा नहीं करनेका आश्वासन दिया। एक दूसरा कथानक और प्रचलित है। एक ब्राह्मण तीर्थ यात्रा करते हुए उनके घर में अतिथि के रूप में ठहर गया। उसने अपना भोजन स्वयं बनाया और बड़ी ही भक्तिपूर्वक ध्यानस्थ होकर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगा। इसी बीचमें शिशु श्रीचैतन्य घरसे निकले और राँधे हुये भातको खा लिया। वह ब्राह्मण इस शिशुकी कार्यवाही देखकर आश्चर्यचकित हो गया और उनके पिता जगन्नाथ मिश्र के निवेदन पर उसने फिरसे भोजन तैयार किया। जब पुनः वह ब्राह्मण ध्यानस्थ होकर श्रीकृष्णको भोग लगाने लगा तब फिर शिशु

निमाई ने वहाँ उपस्थित होकर उस भोजनको भी खा लिया। ब्राह्मणको पुनः तीसरी बार भोजन बनाना पड़ा। इस बार घरके समस्त प्राणी निद्राके वशीभूत होकर सो गये और शिशु निमाई ने अपने श्रीकृष्ण स्वरूपका उस अतिथिको दर्शन देकर कृतार्थ किया और उसे आशीर्वाद दिया। अपनी आराधनाके आराध्य देवको सामने पाकर वह ब्राह्मण विमोहित हो गया। यह भी कहा जाता है कि दो चोरोंने उनके पहने हुए आभूषणोंको चुरानेके लिये उनके पिताके द्वारसे उनको चुरा लिया—रास्तेमें उन्होंने उनको मिठाइयाँ खानेको दी। शिशु निमाईने ऐसी अलौकिक लीला की कि, वे पथ ही भूल गये और उन्हें लेकर वे वापिस निमाईके घरकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर पकड़े जानेके भयसे उन्होंने निमाईको वहीं छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। यह भी कहा जाता है कि, किसी एकादशीके दिन हिरण्य और जगदीशने श्रीकृष्ण पूजाके निमित्त जो भी प्रसादादि सामग्री प्रस्तुत की थी—शिशु निमाईने उन सबको मांगकर स्वयं ही ग्रहण कर लिया। एक दिन की बात है कि, जब शिशु निमाई चार ही वर्ष के थे वे परित्यक्त मिट्टीके बर्तनोंपर बैठ गये। इन बर्तनोंको उनकी माता अपवित्र मानती थी। उन्होंने अपनी माताको समझाया कि, रांधनेके बाद फेंके हुए मिट्टीके बर्तनोंकी पवित्रता एवं अपवित्रताका कोई सवाल ही नहीं उठता। ये सारे कथानक शिशु निमाईकी शैशवावस्था तकके हैं। पाँच वर्षकी उम्र तकसे ही ये कथानक सम्बन्धित हैं।

विद्याध्ययन

आठ वर्षकी उम्रमें शिशु निमाईको मायापुर ग्रामके पास ही गंगानगरमें अवस्थित पण्डित गंगाधरकी पाठशालामें पढ़नेके लिये भेज दिया गया। दो वर्षमें ही वे संस्कृत व्याकरण और धर्मशास्त्रमें निष्णात हो गये। इसके बाद उनका स्वाध्याय अपने ही घरमें चलता रहा। उनके पिता स्वयं एक पण्डित थे अतः उनको अपने ही घरमें सारी प्रमुख पुस्तकें अध्ययनके लिये प्राप्त हो गईं। अपने ही स्वाध्यायके द्वारा उन्होंने उसी स्वाध्याय कालमें स्मृति शास्त्रका अध्ययन किया और अपने मित्रोंकी संगतिमें न्याय शास्त्रको भी पूर्ण रूपसे पढ़ डाला। उनके मित्र प्रसिद्ध पण्डित रघुनाथ शिरोमणिके शिष्य थे।

अपनी दश वर्षकी आयुमें ही वे व्याकरण, धर्मशास्त्र, स्मृति और न्याय शास्त्रके पण्डित हो गये। इसीके बाद उनके बड़े भाई विश्वरूपने गृहत्याग कर दिया और सन्यास धारण कर लिया। चैतन्य—यद्यपि छोटे ही थे—पर उन्होंने अपने माता पिताको आश्वासन दिया और कहा कि, ईश्वरका प्रीतिभाजन होनेके लिये वे उनकी सेवा करते रहेंगे। इसके कुछ समय बाद ही श्री चैतन्यके पिता श्री जगन्नाथ मिश्रने अपनी ईहलीला संवरण की। उनकी माता अत्यन्त शोकाकुल हो उठी। श्री महाप्रभुने अपनी माताको भी अपने सान्त्वनापूर्ण वाक्यों द्वारा धैर्य बंधाया।

गृहस्थाश्रम

चौदह या १५ वर्षकी आयुमें नदियाके पण्डित वह्म आचार्यकी पुत्री लक्ष्मी देवीके साथ उनका विवाह हुआ। इसी उम्रमें श्री चैतन्य न्याय, दर्शन और संस्कृतके प्रधान केन्द्र नदियाके विख्यात विद्वानोंमें गिने जाने लगे थे। स्मार्त पंडितों की तो बात ही जाने दीजिये—नदियाके नैयायिक पण्डित भी उनसे शास्त्रार्थ करनेमें भय खाते थे। एक गृहस्थ होनेके कारण श्री महाप्रभुने धन पानेके लिये पद्माके तटपर अवस्थित पूर्व बङ्गालकी यात्रा की। वहाँपर उन्होंने अपने पाण्डित्यका प्रदर्शन किया और यथेष्ट धन पाया। इसी समयसे वे कभी-कभी यथा अवसर वैष्णव धर्मका प्रचार करने लगे। तपन मिश्रको वैष्णव-वादके सिद्धान्तोंको समझानेके बाद उन्होंने यह आदेश दिया कि, वे बनारस जाँय और वहीं पर निवास करें। जिस समय महाप्रभु पूर्व बङ्गालमें थे उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवीने साँप द्वारा डँसे जानेके कारण इस नश्वर संसारका परित्याग कर दिया। घर लौटने पर उन्होंने अपनी माको शोकाकुल अवस्थामें पाया। मानव शरीरकी अनित्यता पर एक अभिभाषण देकर उन्होंने अपनी माताको आश्वासन दिया। माताके अत्यन्त आग्रहसे उन्होंने राजपण्डित सनातन मिश्रकी कन्या विष्णुप्रियासे विवाह कर लिया। प्रवाससे लौटनेपर उनके शिष्य भी उनके पास समवेत हो गये। इस समय तक उनकी इतनी प्रसिद्धि हो गई थी कि, वे नदियाके सर्वश्रेष्ठ पण्डित माने जाने लगे थे। इसी समय केशव

मिश्र—जो काश्मीरके रहनेवाले थे और अपनेको दिग्विजयी माना करते थे नदियाके पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये नवद्वीप आये। उस दिग्विजयी पण्डितसे भयभीत होकर—कितनी ही पाठशालाओंके अध्यापक निमन्त्रणके बहाने शहर छोड़कर चले गये। मायापुरके बाराकोना घाट पर केशव मिश्रने महाप्रभुसे भेंट की। कुछ देर शास्त्रार्थ करनेके बाद ही वे उस युवक पण्डित से पराजित हो गये। लज्जावशात् वे नदियासे प्रस्थान कर गये। इस समयसे निमाई पण्डित अपने समयके सर्वोच्च विख्यात पण्डित माने जाने लगे।

वैष्णवधर्म प्रचार

अपनी शिष्यमण्डलीके साथ अपनी १६ या १७ वर्षकी आयु में महाप्रभुने गया की यात्रा की। वहाँपर उन्होंने सुप्रसिद्ध माधवेन्द्रपुरीके शिष्य ईश्वरपुरी नामक वैष्णव संन्यासीसे आध्यात्मिक दीक्षा ली। गयासे वापिस नदिया लौटनेपर निमाई पण्डित धार्मिक प्रचारकके रूपमें परिवर्तित हो गये और उनमें इतनी अधिक धार्मिक ज्योति प्रदीप्त हो उठी कि, श्री अद्वैतप्रभु, श्रीवास और अन्य लोगोंने, जिन्होंने श्री महाप्रभु के जन्मके पहले ही वैष्णव धर्मको स्वीकार कर लिया था इस युवक के परिवर्तनको देखकर आश्चर्य प्रकट किया। श्री महाप्रभु अब शास्त्रार्थ में रत नैयायिक, चिन्तनमें रत स्मार्त एवं समालोचक छन्दशास्त्री नहीं रहे। श्रीकृष्णका नाम श्रवण-स्मरण करते ही वे उत्फुल्ल हो उठते थे और अपनी धार्मिक भावु-

कतासे ओत-प्रोत हो जाते थे। मुरारी गुप्तने इस बातपर पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला है कि, श्री महाप्रभुने अपने सैकड़ों शिष्यों के सामने, जो प्रायः सभी विद्वान् थे श्रीवास अंगणमें अपनी अलौकिक शक्तियोंका दिग्दर्शन कराया था। इसी समय उन्होंने श्रीवास अंगणमें अपनी भक्तमण्डलीके साथ कीर्तन पाठशालाकी स्थापना की। वहीं उन्होंने अपना प्रचार कार्य किया, वहीं उन्होंने नृत्य किया, गाया और वहींपर उन्होंने सब प्रकारकी धार्मिक अनुभूतियोंका वर्णन किया। इसी समय नित्यानन्द प्रभु—जो वैष्णव धर्म के प्रचारक थे और समस्त भारतकी यात्रा कर चुके थे—आकर श्री महाप्रभुके साथ सम्मिलित हो गये। यथार्थमें बंगालके विभिन्न स्थानोंसे वैष्णव धर्मके प्रचारक, पण्डित जो हृदयसे इस धर्म प्रचार कार्यमें अनुरक्त थे—आ-आकर श्री महाप्रभुके पास समवेत होते गये। नदिया अब वैष्णव आचार्योंकी सनातन गद्दी बन गया। इन वैष्णव आचार्योंका उद्देश्य वैष्णव धर्मके उच्च सिद्धान्तोंसे मानव को अनुप्राणित करना ही था।

श्री महाप्रभुने सर्वप्रथम प्रभु नित्यानन्द और हरिदासको यह आदेश दिया कि, 'आप लोग शहरकी प्रत्येक गलीमें जाँय, प्रत्येक व्यक्तिके पास उनके घरपर जाँय और उनको यह उपदेश दें कि, वे पवित्रताके साथ अपना जीवनयापन करते हुए हरिनाम लें और अपनी इस प्रचार यात्राके परिणामोंकी सूचना सन्ध्याके समय प्रतिदिन मुझे दें।' इस प्रकार आदेश पाकर

वे दोनों प्रचारक शहर की अली-गलीमें घूम-घूमकर प्रचार करने लगे और उनकी जगाई मधाई से जो उस समयके प्रसिद्ध गुण्डे थे, भेंट हो गई। महाप्रभुका आदेश सुननेपर उन लोगोंने प्रचारकोंका अपमान किया। पर बादमें वे शीघ्र ही महाप्रभुके प्रभावसे भक्तिमें अनुरक्त हो गये। इस घटनासे नदिया निवासी आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने यह कहना शुरू कर दिया कि, निमाई पंडित एक बहुत बड़े विद्वान् ही नहीं हैं—परन्तु वे सर्वशक्तिमान् ईश्वरके भेजे हुए पार्षद हैं। इस समयसे अपनी २३ वर्षकी उम्र तक श्रीमहाप्रभुने अपने सिद्धान्तों का नदिया और उसके पास-पड़ोसके ग्रामों और शहरोंमें प्रचार किया। अपने अनुयायियोंके घरोंमें उन्होंने अपनी अलौकिकताका परिचय दिया, उनको भक्तिवादके सिद्धान्तोंको समझाया और भक्तोंके साथ संकीर्तन किया। नदियावासी उनके भक्त नदियाकी गलियों और बाजारों में हरिनाम संकीर्तन करने गये। इससे सारे शहरमें एक प्रकारकी हलचल सी मच गई और विभिन्न अंचलोंमें इसकी विभिन्न प्रतिक्रिया होने लगी। भक्तमण्डली अत्यन्त प्रफुल्लित हुई। स्मार्त पण्डित निमाई पण्डितकी इस सफलताको देखकर ईर्ष्याग्निमें तड़पने लगे। उन्होंने चांद काजीसे इस विषयमें शिकायतें की और कहा कि, निमाई पण्डितका यह कार्य हिन्दूधर्मके विरुद्ध है। इसपर काजी साहब श्रीवास पण्डितके घर आये और वहाँ एक खोल (मृदंग) को तोड़-फोड़ डाला। साथ ही यह घोषणा की कि,

यदि निमाई पंडित अपने धर्मका शोर-गुल करना बन्द नहीं कर देंगे तो उनको और उनके अनुयायियोंको जवरन् मुसलमान बना लिया जायगा। भक्तोंने इस बातकी खबर श्री महाप्रभुको दी। उन्होंने इसपर यह आदेश दिया कि, शामके समय नदियानिवासी हाथमें मशाल लेकर समवेत हों। इसी आदेशानुसार नदिया निवासी समवेत हुए। श्री महाप्रभुने उनको १४ दलोंमें विभाजित किया और उनको साथमें लेकर संकीर्तन यात्रापर चल पड़े। यह संकीर्तन-मण्डली काजीके घर पहुँची और वहाँ श्री महाप्रभुने काजीसे बहुत देर तक वार्तालाप किया और अन्तमें उसके शरीर का अपने हाथोंसे स्पर्श करके उसके हृदयमें बैष्णव धर्मका प्रभाव अनुप्राणित किया। इसपर काजी साहब रोने लगे और उन्होंने यह कहना शुरू किया कि, 'मैं आध्यात्मिक ज्योतिकी अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ और मेरे सारे सन्देह दूर हो गये हैं। अब मेरे हृदयमें धार्मिक भावनाका उद्भव हुआ है और मैं उससे अत्यधिक प्रभावित हो गया हूँ।' यह कहकर चांद काजी भी संकीर्तन-मण्डलीमें सम्मिलित हो गये। श्री महाप्रभुकी इस आध्यात्मिक शक्तिको देखकर सारा संसार आश्चर्यचकित हो गया और इस घटनाने सैकड़ों व्यक्तियोंका हृदय परिवर्तन कर दिया और वे चारों तरफसे आ-आकर विश्वम्भरके ऋण्डेके नीचे समवेत होने लगे।

श्री महाप्रभुके इस प्रभावके कारण कुलियाके कुछ तुच्छ-बुद्धि ब्राह्मण ईर्ष्यासे जल उठे और उन्होंने उनका विरोध करनेके

लिये एक दलका गठन किया। निमाई पंडित अपने सिद्धान्तोंमें कट्टर होनेपर भी कोमल-हृदय व्यक्ति थे। उन्होंने यह घोषणा की कि, दलबन्दी और सम्प्रदायवाद विकासके दो बहुत बड़े शत्रु हैं। जब तक वे एक परिवारभुक्त रहकर नदियाके निवासी बने रहेंगे तब तक उनके उद्देश्यों को पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त होगी। इसके बाद ही उन्होंने अपने परिवार, जाति और गृहस्थ धर्मका परित्याग कर विश्वका नागरिक बननेका अपना निश्चय प्रकट किया। इसी निश्चयानुसार अपनी २४ वर्षकी आयुमें कटवा में उन्होंने केशवभारतीसे संन्यास ग्रहण कर लिया। उनके वियोग में उनकी माता और धर्मपत्नीने अत्यधिक रुदन किया पर हमारे महाप्रभु कोमल हृदय होते हुए भी अपने सिद्धान्तोंके पक्षके थे। उन्होंने अपने घरके तुच्छ विश्वको छोड़ दिया और श्रीकृष्णके अनन्त आध्यात्मिक विश्वके जनसाधारणके हितार्थ श्री हरिनाम का प्रचार करने लगे।

संन्यासाश्रम

संन्यास लेनेके बाद वे शांतिपुरमें श्री अद्वैत प्रभुके घर पधारे। अद्वैत प्रभुने उनके समस्त प्रशंसकों और मित्रोंको नदियासे शांतिपुर आनेके लिये निमंत्रित किया और वहीं पर अपने पुत्रको देखनेके लिये शची देवी को भी ले आये। जब शची देवी ने अपने पुत्रको संन्यासीके वेशमें देखा तो उनका हृदय हृष और वेदनासे आप्लावित हो गया। संन्यासी होनेके कारण कृष्ण चैतन्यने कौपीन और वहिर्वासको छोड़कर औः

कुछ भी धारण नहीं कर रखा था। उनके शिरके बालोंका मुण्डन हो चुका था और उनके हाथमें दण्ड और कमण्डलु थे। श्री महाप्रभु अपनी माताके चरणोंमें गिर पड़े और कहा कि, 'माँ ! यह शरीर आपका है। मैं आपके आदेशोंको मानूँगा। मेरे आध्यात्मिक विकासके लिये मुझे वृन्दावन जानेकी आज्ञा दीजिये।' माताने अद्वैत और अन्य लोगोंसे सलाह करके यह आदेश दिया कि, श्री महाप्रभु जगन्नाथपुरीमें रहें ताकि, वे समय-समयपर उनकी खबर पाती रहें। महाप्रभुने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके कुछ ही दिन बाद वे उड़ीसाकी यात्राके लिये शांतिपुरसे चल पड़े। श्री महाप्रभुके चरित्र लेखकों ने कृष्ण चैतन्य (संन्यास लेनेके बाद महाप्रभुको इसी नामसे पुकारा जाने लगा था।) की इस यात्राका (शान्तिपुरसे उड़ीसा तक) विशद वर्णन अपने अपने ग्रन्थोंमें दिया है। वे भागीरथी के किनारे-किनारे छत्रभोग तक गये। यह स्थान इस समय थाना मथुरापुर डायमण्ड हार्बर २४ परगना में हैं। वहाँ से वे नौका द्वारा मिदनापुर जिलेके प्रयाग घाट तक गये। वहाँ से वे नैदल बालासोर और कटक होते हुए पुरी धाम पहुँचे। मार्गमें उन्होंने भुवनेश्वरके मन्दिर भी देखे। पुरी पहुँचने पर उन्होंने मन्दिरमें जाकर श्री जगन्नाथके दर्शन किये और सार्वभौमके रहनेपर उन्हींके यहाँ रहने लगे। सार्वभौम उस समयके वेख्यात पण्डितोंमें से थे। वे अपने युगके सर्वश्रेष्ठ नैयायिक थे और श्री शंकराचार्यके वेदान्त दर्शनके बहुत बड़े ज्ञाता थे।

नदियाके विद्यानगरमें उनका जन्म हुआ था। वहाँ पर स्थापित अपनी पाठशालामें उन्होंने असंख्य शिष्योंको न्यायशास्त्रकी शिक्षा दी थी। वे निमाई पंडितके जन्म लेनेके पहले ही पुरी में रहने लगे थे। उनके साले गोपीनाथ मिश्रने हमारे चरित्र नायक संन्यासी कृष्ण चैतन्यका उनको परिचय दिया। सार्वभौम उनके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्यान्वित हो गये और उनके मनमें इस प्रकारकी भावना उठी कि, जीवनके दीर्घकालीन वर्षोंमें इस युवकके लिये संन्यास धर्मका निवाहना अत्यन्त कठिन ही होगा। गोपीनाथ महाप्रभुको नदियासे ही पहचानते थे और उनको बड़े ही आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उन्होंने सार्वभौमको समझाया कि, यह संन्यासी कोई साधारण मानव नहीं है। इस बात पर गोपीनाथ और सार्वभौममें गरमागरम बहस हो गई। सार्वभौम ने महाप्रभुसे यह कहा कि, 'आप मेरे से वेदान्त सूत्रोंका भावार्थ सुन लें।' महाप्रभुने इसे स्वीकार कर लिया। महान् विद्वान् सार्वभौमने ७ दिनों तक गंभीरताके साथ जो कुछ कहा महाप्रभुने उसे शान्तिपूर्वक सुना। अन्तमें सार्वभौमने उनसे कहा कि, 'कृष्ण चैतन्य! मैं यह सोचता हूँ कि, तुम वेदान्तको बिलकुल ही नहीं समझते हो कारण तुम मेरी व्याख्याको सुनकर कुछ भी कहते नहीं हो, पूछते नहीं हो!' कृष्ण चैतन्यने इसपर यह उत्तर दिया कि, वे वेदान्तके सूत्रोंको अच्छी तरह समझते हैं पर शंकराचार्य अपनी टीका द्वारा क्या समझाना चाहते हैं यही समझमें नहीं आता है। इसपर आश्चर्यचकित होकर सार्वभौम

ने कहा कि, 'यह कैसे हो सकता है कि, तुम सूत्रोंका अर्थ तो समझते हो पर सूत्रोंकी व्याख्या करनेवाली टीकाको नहीं समझते।' अच्छा, यदि ऐसी ही बात है तो तुम मुझे वेदान्तसूत्रोंकी अपनी व्याख्या सुनाओ।' इसपर महाप्रभुने शंकराचार्यकी टीकाको विलकुल छोड़कर वेदान्तके समस्त सूत्रोंकी अपनी व्याख्याका विशद रूपसे वर्णन किया। श्रीकृष्ण चैतन्य द्वारा जो व्याख्या की गई, उसमें जो तर्कयुक्त बातें कही गई थीं, उनकी यथार्थता, सत्यता, सुन्दरता और सौष्ठवको महान् विद्वान् सार्वभौमने अपनी निर्मल बुद्धिसे समझा। इस व्याख्याको सुननेके बाद उनको यह कहनेके लिये विवश होना पड़ा कि, 'यह पहला ही अवसर है जब मुझे ऐसा महापुरुष मिला जो ब्रह्मसूत्रोंका इतनी सरलता और सुगमतासे वर्णन कर सका हो।' उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि, शंकराचार्य द्वारा किये गये भाष्यमें वेदान्तसूत्रोंका इतना स्वाभाविक वर्णन नहीं पाया जाता जैसा कि, श्रीमहाप्रभुके द्वारा आज प्राप्त हो सका है। इसके पश्चात् वे महाप्रभुके प्रशंसक और अनुयायी बन गये। इसके कुछ ही समयके बाद सार्वभौम सर्वश्रेष्ठ वैष्णवोंमें गिने जाने लगे। ऐसा विवरण प्राप्त होता है कि, श्रीकृष्ण चैतन्यकी प्रशंसाके गीत सारे उड़ीसा निवासियोंने गाये और सैकड़ोंकी तादादमें आ आकर लोग उनके अनुयायी बनने लगे। इसी बीच श्रीमहाप्रभुने दक्षिण भारतकी यात्रा करनेका विचार किया और वे कृष्णदास ब्राह्मण को साथमें लेकर चल पड़े।

दक्षिण भारत यात्रा

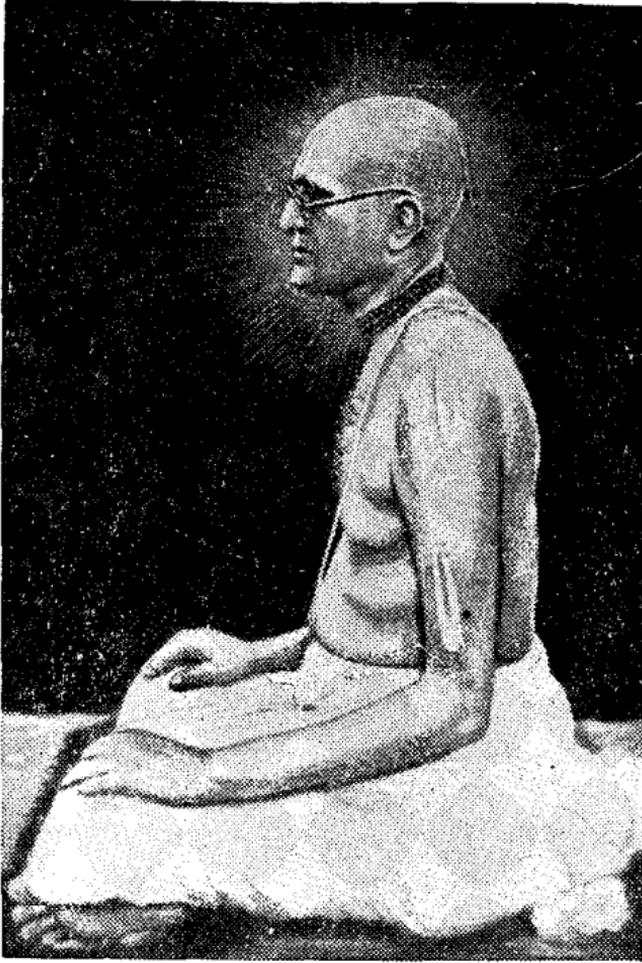
श्रीकृष्ण चैतन्यके चरितामृत लेखकोंने इस यात्राका भी विशद विवरण लिपिवद्ध किया है। वे सर्वप्रथम कूर्मक्षेत्र गये और वहाँ पर वासुदेव नामक एक कोढ़ीको स्वस्थ बनाकर अपनी अलौकिकताका परिचय दिया। वे गोदावरी तट पर विद्यानगरके शासक रामानन्दरायसे मिले। प्रेम भक्तिके विषय में उनके साथ आध्यात्मिक वार्तालाप हुआ। यहाँ पर श्री महाप्रभुने एक अलौकिक चमत्कार दिखाया। उन्होंने उन सात ताल वृक्षोंको स्पर्श किया जिनके बीच छिपकर दशरथ-पुत्र रामचन्द्रने बालिराज पर बाण चलाया था। श्री महाप्रभुके स्पर्श करते ही सातों वृक्ष तुरन्त अदृश्य हो गये। इस सारी यात्रामें उन्होंने श्रीनाम-संकीर्तन एवं वैष्णवधर्मका प्रचार किया। चातुर्मास वितानेके लिये वे रंगक्षेत्रमें चार महीनों तक बेंकट भट्ट के घरमें रहे। वहाँ उन्होंने बेंकटके समस्त परिवारवर्गको रामानुजी वैष्णववादसे कृष्ण भक्तिमें परिवर्तित कर दिया। बेंकटके पुत्र गोपाल, जो उस समय दस वर्षके थे—आगे चलकर वृन्दावनमें चले आये और श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रमुख शिष्य छः गोस्वामियोंमें एक हुए। अपने चाचा प्रबोधानन्द सरस्वतीसे संस्कृत पढ़कर उन्होंने वैष्णववाद पर कितने ही ग्रन्थ लिखे।

श्री चैतन्यने दक्षिण भारतके अनेक स्थानोंकी यात्रा की। वे कुमारी अन्तरीप तक गये। दो वर्ष बाद भीमा तट पर अवस्थित पंढरपुर होते हुए पुरी वापिस आये। पंढरपुरमें उन्होंने

सन्त तुकारामको आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की जो उस समयके बादसे अपने क्षेत्रके सुप्रसिद्ध प्रचारक हुए। उन्होंने अपने द्वारा बनाये गये अभंगों में इस बातको स्वीकार किया है। इन अभंगों का बम्बई सिविल सर्विसके श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुरने ग्रन्थ रूपमें संग्रह किया है। अपनी इस यात्रामें श्रीकृष्ण चैतन्यने स्थान स्थान पर अनेक बौद्ध, जैन और मायावादी पण्डितोंसे शास्त्रार्थ किया और उनको वैष्णव धर्मका अनुयायी बनाया।

रूप और सनातन का वैष्णवधर्म स्वीकार करना

श्रीकृष्ण चैतन्यके पुरीमें वापिस लौटनेपर राजा प्रतापरुद्र और अनेक ब्राह्मण पंडित श्री चैतन्यकी पताकाके नीचे समवेत हो गये। इस समय उनकी उम्र २७ वर्ष की थी। अपने २८ वें वर्षमें वे मालदहके गौड़ देश तक गये। वहाँ उन्होंने रूप और सनातन दो महापुरुषोंको अपना अनुयायी बनाया। यद्यपि रूप और सनातन दोनों ही कर्णाटी ब्राह्मण परिवारके वंशधर थे तथापि हुसेनशाहके निरन्तर संगसे वे मुस्लिम धर्मके प्रतीक हो गये थे। बादशाहने उनके नामोंका भी परिवर्तन कर दिया था। वे क्रमशः दबीरखास और साकेर मल्लिकके नामसे पुकारे जाते थे। बादशाह उनको हृदयसे प्रेम करते थे। ये दोनों ही फारसी, अरबी, संस्कृतके महान् पण्डित थे और राज्यके विश्वस्त सेवक थे। उन दोनों ने ही हिन्दूधर्ममें पुनः प्रविष्ट होनेके लिये कोई मार्ग न पाकर श्रीमहाप्रभुको पुरीमें पत्र लिखा और



श्रीकृष्ण चैतन्य परम्परा के नवम आचार्य परमहंस परिव्राजक
१०८ श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी जी महाराज ।

उनसे आध्यात्मिक सहायता चाही। महाप्रभुने इसके उत्तरमें उनको यह लिखा कि, वे स्वयं उनके पास जायेंगे और आध्यात्मिक कठिनाइयोंसे उनका उद्धार करेंगे। जब महाप्रभु गौड़में पहुँचे तो दोनों भाई महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और उनकी स्तुति करने लगे। इसपर महाप्रभुने उनको वृन्दावन जाने और वहीं पर अपनेसे मिलनेका आदेश दिया।

श्री महाप्रभु शान्तिपुर होते हुए पुरी वापिस चले आये। शान्तिपुरमें पुनः उन्होंने अपनी माताके दर्शन किये। कुछ दिनों तक पुरीमें ठहरनेके बाद वे वृन्दावन की ओर चल पड़े। इस बार उनके साथ बलभद्र भट्टाचार्य थे। वे वृन्दावन गये और वहाँसे लौटते हुए प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में उन्होंने अनेक मुसलमानोंको कुरानसे उदाहरण देकर वैष्णव धर्ममें सम्मिलित कर लिया। इन वैष्णवोंके वंशधर आज तक पठान वैष्णव कहे जाते हैं। रूप गोस्वामी प्रयाग में श्री महाप्रभुसे मिले। श्री चैतन्यने दस दिनों तक उनको अध्यात्मका उपदेश दिया और उनको अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये वृन्दावन जानेका आदेश दिया। उनका पहला उद्देश्य यही था कि, वे (अर्थात् रूप गोस्वामी) प्रेम और भक्तिका वैज्ञानिक वर्णन करते हुए ग्रंथ-रचना करें। दूसरा उद्देश्य यह था कि, धार्मिक जगत्के कल्याण के लिये उन स्थानोंका पुनरुद्धार किया जाय जहाँ द्वापरके अन्त में श्रीकृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक लीलायें कीं। श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावनकी ओर चले और महाप्रभु प्रयागसे बाराणसी चले

आये । वहाँ वे चन्द्रशेखरके यहाँ ठहरे और तपन मिश्रके यहाँ भोजन करते थे । सनातन गोस्वामीने यहीं पहुँचकर उनसे भेंट की और दो महीनों तक श्री महाप्रभुसे अध्यात्मका उपदेश लिया । रूप और सनातनको जो जो उपदेश दिये गये, इस सम्बन्धमें महाप्रभुके चरित्र लेखकोंने विशेषतः कृष्णदास कविराजने विशद विवरण दिया है । कृष्णदास कविराज श्री महाप्रभुके समकालीन लेखक नहीं थे पर उन्होंने सारी घटनाओंका विवरण गोस्वामियोंसे पूछ पूछकर लिपिवद्ध किया था । रूप और सनातनके भतीजे एवं श्री महाप्रभुके शिष्योंमें अन्यतम श्री जीव गोस्वामीने अपने बहुमूल्य षट्संदर्भ ग्रन्थमें श्री महाप्रभुकी विचारधाराकी विशद व्याख्या की है ।

बनारसमें श्री महाप्रभु

बनारसमें रहते हुए श्रीकृष्ण चैतन्यने एक मरहट्टे ब्राह्मणके घरमें बनारसमें रहने वाले प्रमुख और विद्वान् सन्यासियोंसे वार्तालाप किया । इस ब्राह्मणने अपने यहाँ उन सन्यासियोंको निमन्त्रित करके बुलाया था । इस मुलाकातके अवसर पर श्रीकृष्ण चैतन्यने एक चमत्कार दिखाया, जिसने उन सन्यासियोंको उनकी तरफ आकृष्ट कर लिया । सन्यासियोंसे उनका विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ । वे सन्यासी अपने प्रमुख नेता, महान् पण्डित प्रकाशानन्द सरस्वतीके साथ वहाँ आये थे । कुछ देरके वार्तालापके बाद ही उन्होंने महाप्रभुके सिद्धान्तोंको मान लिया और यह स्वीकार किया कि, शंकाराचार्यके भाष्यसे वे भ्रममें

पड़े रहे। बड़े से बड़े विद्वान्के लिये भी श्रीकृष्ण चैतन्यका अधिक देरतक विरोध करना असम्भव हो जाता था कारण उनमें एक ऐसी अलौकिकता थी कि, जो उनके हृदयको अनुभूतिप्रदान करती थी और उनको अपने आध्यात्मिक विकासके लिये कराहनेके लिये विवश कर देती थी। बनारसके सन्यासी श्री महाप्रभुके चरणों में गिर पड़े और उनकी कृपा-भिक्षा मांगने लगे। इस पर श्री चैतन्यने उनको विशुद्ध भक्तिका उपदेश दिया और उनके अन्तःकरणमें श्रोकृष्ण-प्रेमका उद्बोधन किया जिसके कारण उनको अपनी साम्प्रदायिक भावनाओंका त्याग कर देना पड़ा। इस अलौकिक वार्तालापके बाद सारा शहर ही वैष्णवोंमें परिवर्तित हो गया। बनारस निवासियोंने अपने नये प्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यके साथ श्रीनाम संकीर्तनमें उत्साहसे भाग लिया। सनातनको वृन्दावनकी तरफ भेजकर महाप्रभु अपने साथी बलभद्रके साथ जङ्गलोंसे होते हुए पुरी पहुंचे। बलभद्रने इस प्रकारका विवरण संसारके समक्ष उपस्थित किया है कि, रास्तेमें महाप्रभुने अपने अनेक अलौकिक चमत्कार दिखाये। उन्होंने इन जङ्गलोंमें रहने वाले सिंह, बाघ और हाथियोंको श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन की स्वर-धुनि पर नृत्य करनेके लिये विवश किया। इन जङ्गलोंके निवासी ये हिंस्र पशु श्रोकृष्ण नामकी मधुर ध्वनि सुनकर आनन्दमें विभोर होकर अपने आप नाचने लगे।

अन्तर्धान

इस समयके बादसे अर्थात् अपने ३१वें वर्षसे श्री महाप्रभु

बराबर पुरीमें ही काशी मिश्रके घरमें रहे । यहीं पर ४८ वर्षकी आयुमें उन्होंने टोटा गोपीनाथके मन्दिरमें संकीर्तन करते हुये अपनी ईहलीला संवरण कीं । उनका यह १८ वर्षोंका जीवन-प्रेम, करुणा और आध्यात्मिक अनुभूतिसे ओत प्रोत था । उनके आस-पास उनके भक्तोंका जमघट लगा रहता था। इस जमघटमें आनेवाले भक्त उच्च स्तरके विद्वान् वैष्णव थे । अपने सात्विक चरित्र और विद्वत्ताके कारण वे साधारण मानवसे ऊपर उठ चुके थे । उनके धार्मिक सिद्धान्त अडिग थे और उनके अन्तःकरण श्री राधाकृष्णके प्रेममें विभोर थे । स्वरूप दामोदर जो महाप्रभुके नदिया अवस्थानके समय पुरुषोत्तमाचार्यके नामसे विख्यात थे बनारसमें श्रीकृष्ण चैतन्यके शरणागत हुए और उनके प्रमुख सचिवके रूपमें निरन्तर उनकी सेवा करते रहे । किसी भी कवि या दार्शनिककी रचना तबतक श्री महाप्रभुके सामने नहीं रखी जाती थी जब तक कि, स्वरूप उसे विशुद्ध और उपयोगी नहीं समझ लेते थे । राय रामानन्द उनके सहयोगी थे । ये दोनों ही संकीर्तन करते थे और महाप्रभु पूजाके विभिन्न तत्वोंके सम्बन्धमें अपने विचारोंकी इनके समक्ष व्याख्या करते थे । धार्मिक विषयों में परमानन्द पुरी श्री महाप्रभुके परामर्शदाता थे । महाप्रभुके इस जीवनके विषयमें महाप्रभुके चरित्र-लेखकोंने असंख्य कथानकोंका विवरण दिया है पर हम यहाँ उनका वर्णन करके इस लघु ग्रन्थको विशद नहीं बनाना चाहते । दिन-प्रति-दिन महाप्रभु अपनी भाव-धारा में तल्लीन होते गये और उनके समस्त प्रशंसक और अनुयायी

महाप्रभुकी इस तन्मयताको १८ वर्षों तक सावधानीके साथ लक्ष्य करते रहे। श्री महाप्रभु अर्चना करते थे, वृन्दावनमें अपने अनुयायियोंके साथ पत्र व्यवहार करते थे और जो भी धार्मिक सज्जन उनके पास आते थे—उनसे वार्तालाप करते थे। वे श्रीकृष्ण-प्रेममें तन्मय होकर नृत्य करते थे, गाते थे और अपनी किसी प्रकारकी सुधि नहीं रखते थे और हर समय अपने धार्मिक विचारोंमें तन्मय रहते थे। जो भी व्यक्ति उनके पास आते थे, उनको सर्वशक्तिमान् ईश्वर मानकर उनकी पूजा करते थे और यह समझते थे कि, वे मानव-कल्याणके लिये ही इस संसारमें अवतीर्ण हुए हैं। वे आजीवन अपनी मा के प्रति भक्तिमान् रहे और जो भी व्यक्ति नदियाकी ओर जाता था उसके साथ उनके लिये महाप्रसाद भेजा करते थे। वे विनम्रताके साक्षात् अवतार थे। जो भी उनके संपर्कमें आता था उनकी मोहक और मधुर आकृतिको देखकर आनंदविभोर हो जाता था। बंगालमें अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभुको सारा उत्तरदायित्व सौंपा। वृन्दावनमें उन्होंने श्रीकृष्ण-प्रेम और भक्तिका प्रचार करनेके लिये अपने छः शिष्यों (गोस्वामियों) को भेजा। जो भी शिष्य अपने पवित्र जीवन पथसे विचलित हुआ—महाप्रभुने उसको दण्ड दिया। छोटे हरिदासके विषयमें उनकी विवेचना इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। जिस किसीने भी महाप्रभुसे परामशं मांगा उसको उन्होंने यथार्थ उपदेश दिया। रघुनाथदास गोस्वामीको दिये गये उपदेश इसी तथ्यके द्योतक

हैं। उनका बड़े हरिदासके साथ जैसा व्यवहार था उससे यह पता चलता है कि, आध्यात्मिक पुरुषोंके साथ वे कितना प्रेम करते थे। इससे यह भी हमारे समक्ष प्रत्यक्ष हो जाता है कि, आध्यात्मिक भ्रातृत्वके भीतर उन्होंने जात-पाँतके समस्त भेद-भावोंको विसर्जित कर दिया। 'जात-पाँत पूछे नहीं कोई। हरिको भजे सो हरिका होई'—इस भावनाके वे मूर्तरूप थे।

श्री महाप्रभुके प्रमुख सिद्धान्त

हम यहाँपर श्रीमहाप्रभुके प्रमुख उपदेशोंपर भी थोड़ा प्रकाश डालना चाहते हैं। जो लोग महाप्रभुके विचारोंसे अवगत नहीं हैं उनको इससे इस विचारधाराको समझने सोचनेका अवसर प्राप्त होगा।

सर्व प्रथम श्रीकृष्ण चैतन्यने हमें यह बताया है कि, मानव जिस भौतिक वातावरणमें रहता है उसमें निवास करते हुए वह उस अलौकिक भगवान्को प्राप्त करनेका अधिकारी नहीं बन पाता। इस विषयमें 'युक्ति' का उपयोग करना किसी प्रकारका महत्व नहीं रखता। मनुष्यकी धार्मिक विचारधारा, जिसे श्री महाप्रभुने रुचिकी संज्ञा दी है, श्रीभगवद् प्रेमकी उपलब्धिमें हमें बहुत अग्रसर करती है। आध्यात्मिक विषयोंमें 'अनुभूति' ही हमें आलोक दिखा सकती है। अनुभूति वैष्णुकुठसे अवतीर्ण होकर पवित्र और सौभाग्यशाली आत्माओंके माध्यम से श्रुति अर्थात् वेदोंके रूपमें हमारे सामने हैं। अतः वेद अपनी विशद व्याख्यारूपी पुराणोंके साथ आध्यात्मिक विचारों

की उपलब्धि के लिये एकमात्र साधन हैं। ये नैसर्गिक और सनातन हैं। आध्यात्मिक उच्च स्तरमें वेदों द्वारा निर्धारित सत्यको ही सत्यके रूपमें स्वीकार करना चाहिए। युक्ति अनुभूत सत्यके उद्भवमें हमें सहायता प्रदान करती है—उसे हम सिर्फ एक सहायिकाके रूपमें मान्यता प्रदान कर सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभुके मतानुसार वेद हमें प्रमुख रूपसे निम्न ६ सिद्धान्तोंके पालनका उपदेश देते हैं। यथा—

(१) हरि सर्वशक्तिमान् हैं। उनके समान दूसरा नहीं है। वे एक हैं। दो नहीं।

(२) वे सर्वशक्ति सम्पन्न हैं।

(३) वे रसके महासागर हैं।

(४) यह आत्मा उसी हरिकी शक्तियोंसे उद्भूत उनके विभिन्नांश हैं।

(५) कितनी ही आत्मायें प्रकृति अर्थात् छायारूपी शक्तिसे समृद्ध रहती है।

(६) कितनी ही आत्मायें प्रकृतिकी पकड़से मुक्त रहती हैं।

(७) संसारकी समस्त आध्यात्मिक एवं लौकिक विचार-धारा उस सर्वशक्तिमान् हरिके भेदाभेद प्रकाशमें अन्तर्निहित है।

(८) आध्यात्मिक जीवनकी उपलब्धि के लिये भक्ति ही एकमात्र साधन है।

(९) आध्यात्मिक ज्ञानका चरम उद्देश्य श्रीकृष्ण-प्रेम है।

उपरोक्त ६ सिद्धांतों पर एक एक करके हम यहाँ संक्षिप्त रूपसे विचार करते हैं ।

एकमात्र सर्वशक्तिमान् श्रीहरि

(१) हरि सर्वशक्ति सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च सत्ता है— वह एक है—उसके जैसा दूसरा नहीं है । आर्यमतानुसार ब्रह्म को सृजन शक्तिसम्पन्न और शिवको नाशक शक्तिसम्पन्न माना गया है । इन्द्र उससे निम्न स्तरके शासनका प्रमुख है । अतः वह स्वयं सर्वशक्तिमान् नहीं है । इन्द्र विभिन्न कार्योंमें नियुक्त होकर विभिन्न स्वरूपोंका प्रतिनिधित्व करते हैं । उन्होंने अपनी इन शक्तियोंको एक यथार्थ एवं प्रमुख श्रोतसे पाया है । अतः वे श्रीहरि या श्री भगवान्की सेवामें लगे हुए सहायक तत्व हैं । श्री भगवान्के सम्बन्धमें तीन विभिन्न आध्यात्मिक विचारधारायें हैं—यथा (१) अद्वैतवादियों (Pantheistic School) द्वारा वर्णित नकारात्मक ब्रह्म (२) योगियों द्वारा वर्णित विश्व-आत्मा स्वरूप परमात्मा (३) सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वशक्ति, कीर्ति, सौंदर्य, बुद्धि सम्पन्न, सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ सृष्टि, स्थिति, विनाश तीनोंके विधायक श्री हरि अर्थात् श्री भगवान् । अतः ब्रह्म और परमात्माका अस्तित्व श्री भगवान्में अन्तर्निहित है । आध्यात्मिक विचारधारामें इसीलिये भगवान् ही श्रीहरि हैं और वे सर्वोच्च शक्तिके रूपमें विराजमान हैं । मानव विचारधारायें या तो मानसिक हैं या आध्यात्मिक । मानसिक विचारधारा दोषपूर्ण है कारण यह भौतिकवाद द्वारा सृष्ट सिद्धान्तोंसे सम्बन्ध

रखती है। आध्यात्मिक विचारधारा उस सर्वोच्च शक्तिकी उपलब्धि के लिये निश्चय ही एक सुगम मार्ग है। श्री भगवान् की आध्यात्मिक विचारधारा के भी दो प्रकार हैं। एक विचारधारा के अनुसार देवताका व्यक्तित्व उस सर्व शक्तिसम्पन्न शक्तिके अधीन है और दूसरी विचारधारा के अनुसार उस सर्व शक्ति समन्वित शक्तिको उसका ही सौन्दर्य अपने वशीभूत कर लेता है। पहली विचारधारा वैकुण्ठवासी भगवान् नारायणकी ओर हमें आकृष्ट करती है और दूसरी विचारधारा हमें अपनी ह्लादिनी शक्तिस्वरूपा राधिकाके साथ सर्व सौन्दर्यमाधुरी-मण्डित श्रीकृष्णकी ओर उन्मुख करती है। कृष्ण मानवोंमें मानवके रूपमें प्रतीत होनेके साथ-साथ देवाधिदेवके रूपमें भी सर्वमान्य हैं। कृष्ण आकर्षित करते हैं, प्रेम करते हैं और समस्त आत्माओंमें भक्तिका उद्भव करते हैं। वे और उनका व्यक्तित्व पूर्णरूपसे आध्यात्मिक है और इस भौतिकवादी संसारसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। मानव की भौतिकवादी विचारधारा उनकी उपलब्धि नहीं कर सकती। मानवमें अन्तर्निहित शक्ति और भक्ति द्वारा ही श्रीहरिका प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है या उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। भौतिक विषयोंमें लवलीन आत्मा अपनी अवनत दशाके कारण श्रीकृष्ण और आध्यात्मिक जगत्में उनकी आध्यात्मिक लीलाओंकी अनुभूति करने या दर्शन करनेके अधिकारोंसे ही वंचित हो जाती है। परन्तु श्रीकृष्ण अपनी निज सर्वोच्च

शक्ति द्वारा समस्त मनुष्योंके चक्षुओंके समक्ष अपनी सम्पूर्ण वृन्दावन लीलाओंके साथ आविर्भूत हो सकते हैं। परन्तु माया से आवद्ध मानव श्रीकृष्ण और उनकी लीलाओंको धारण करने और उनपर विश्वास करनेमें बहुत कम ही समर्थ होता है। ज्यों-ज्यों उसका आध्यात्मिक विकास होता जाता है त्यों-त्यों वह श्रीकृष्णका दर्शन पाने लगता है, उनको अपने सर्वान्तःकरण से प्यार करने लगता है। हमारे इस संक्षिप्त वर्णनमें हम इस विषयपर विस्तृत रूपसे पूर्ण रूपमें विवेचन नहीं कर सकते। अतः हम निम्न शब्दोंके साथ इस विषयको अपने पाठकोंकी विवेचनाके लिये छोड़कर ही सन्तोष करते हैं। यथा—

“धीरे-धीरे भौतिकवादकी कठोर सांकलको तोड़ दो। अपनी अन्तरात्मामें श्रीकृष्णानुभूतिके लिये प्रयत्नशील बनो। तथा-कथित मायावादी विचारकोंसे जिन विचारोंकी तुम्हें उपलब्धि हुई हो उस भ्रमोत्पादक विचारधाराका परित्याग कर दो। ये मायावादी विचारक श्रीहरिके अस्तित्वको ही अस्वीकार करने की धृष्टता करते हैं। स्वयं विनम्र बनो और जो लोग आध्यात्मिक विकासके लिये प्रयत्नशील हों उनका सम्मान करना सीखो। आध्यात्मिक पुरुषोंके सत्संगमें एकाकी इन सबका अपने हृदयसे, मनसे और शक्तिसे अभ्यास करो तब तुम अति अल्प समयके भीतर ही श्रीकृष्णकी अनुभूति कर सकनेमें समर्थ बन सकोगे। श्रीकृष्ण कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है और न तुमको यह अधिकार है कि, तुम यह सोचो कि, श्रीकृष्ण एक

भौतिकवादी कल्पनाप्रसूत ऐसा तत्व है जिसे मूर्खोंने सर्वोच्च शक्तिके रूपमें अभिव्यंजित करके जगत्के सामने उपस्थित कर दिया है। श्रीकृष्णको न तो विषय और उद्देश्यके विश्लेषणकी प्रणाली द्वारा ही समझा जा सकता है और न तथाकथित स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा मानव मन पर स्थापित और जगत्में प्रचारित प्रतारणामूलक पदार्थके रूपमें ही उनको स्वीकार किया जा सकता है। कृष्ण नैसर्गिक हैं। वे आध्यात्मिक सत्य हैं। जब मानवकी आत्मा भौतिक विषयोंके समस्त दबावसे मुक्त हो जाती है तब श्रीकृष्णकी छाया दिखाई पड़ती है। श्रीकृष्ण प्रेम-साध्य विषय है और यह प्रेम अन्तरात्माके विकाससे उद्भव होता है। इसी रूपमें श्रीकृष्णको स्वीकार करनेका प्रयास करो और तब तुम अपने अन्तर्चक्षुओंसे उनके दर्शन पा सकोगे। शब्दों द्वारा उस अनिर्वचनीय अलौकिक ईश्वरका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अनुभूतिजन्य है। श्रीकृष्णमें ईश्वरत्व का सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और समस्त आध्यात्मिक आदर्श अन्तर्निहित है। उनके विरोधमें तर्कोंको उपस्थित करना अपनी आत्माको धोखा देना है और मानवके लिये जो आशीर्वाद उन्होंने संचित कर रखा है उससे अपनेको वंचित करना है। अतः श्रीकृष्ण नाम, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णलीला और श्रीकृष्णके अवदानों के विषयमें जो भी वर्णन आपके समक्ष उपस्थित हों उनको आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे स्वीकार करना चाहिये। शब्दों द्वारा आवश्यक रूपेण उद्भासित भौतिक अंशको त्याग देना चाहिये।”

अनन्त शक्तियों के भण्डार श्रीहरि

(२) श्रीहरि अनन्त शक्तियोंके भण्डार हैं। उनमें समस्त शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं। अनन्त शक्तियोंके भण्डारका तात्पर्य यही होता है कि, उनकी शक्तियाँ समय और स्थानकी सीमासे बाहर हैं कारण उनकी शक्तियाँ ही काल और स्थानकी सृष्टि करती हैं। उनकी शक्तियाँ उनमें ही अन्तर्निहित हैं। उनकी अनुभूतिसे ही उनकी शक्तियोंकी अनुभूति हो सकती है। इन दोनों का पृथक् रूपमें अनुभव नहीं किया जा सकता। भौतिक-वादी दृष्टिकोणमें व्यक्ति और उसकी शक्तियोंमें भेद रहता है, वस्तु और उसके अवदानों में भेद रहता है, उसके नाम, आकार और कार्योंमें भी भेद रहता है परन्तु यह आध्यात्मिक सत्य है कि, ईश्वरके नाम, स्वरूप, अवदान और कार्योंमें किसी प्रकारका भेद नहीं रहता। नाम, स्वरूप, कार्य-कारण, अवदान सब ईश्वरसे अभिन्न ही रहते हैं। वहाँ भेदका प्रश्न ही नहीं है। समस्त उस ईश्वरमें अन्तर्निहित हैं। उसीमें सृष्टि और उसीमें लय है। तर्क सिर्फ भौतिक विषयोंसे ही सम्बन्धित है। इस आध्यात्मिक सत्यको तर्ककी कसौटीपर नहीं कसा जा सकता है। यह अनुभूतिकी वस्तु है, तर्कका इस पर कोई अधिकार नहीं है। श्रीकृष्णमें सारी इच्छायें समन्वित हैं—वे अपनी स्वतः स्फूर्त इच्छासे ही अपनी सर्वोच्च शक्तिका उपयोग करते हैं। उनकी इच्छासे जो कार्य किये जाते हैं उनपर सांसारिक विधि विधानोंका कोई अधिकार नहीं है—वे किसी

कानूनकी परिधिमें नहीं आते कारण उनकी ही इच्छा और शक्तियोंसे ये सारे विधि-विधान रचे गये हैं—समस्त कानूनों की सृष्टि हुई है। साथ ही ये सारे कानून उनकी इच्छासे उन्हींमें लय हो जाते हैं। शक्तिका परिचय उसके उपयोगसे ही प्राप्त होता है। इस संसारमें हम श्रीकृष्णकी विभिन्न शक्तियोंका तीन ही स्वरूपोंमें निदर्शन पाते हैं। हम इस माया से परिपूर्ण संसारको देखते हैं और यह समझते हैं कि, उनकी शक्तियाँ इस मायाकी सृष्टि कर सकती हैं। इस दृष्टिकोणसे हम इस विश्वको उनकी माया शक्तिका निदर्शन मानते हैं। वेदोंमें भी इसे मायाशक्तिके नामसे ही अभिहित किया गया है। हम मानवको देखते हैं और यह समझने लग जाते हैं कि, उनकी शक्तियोंमें सीमित और अपूर्ण आत्माओंको सर्जन करनेकी शक्ति है। शास्त्रोंमें इस शक्तिको जीवशक्तिका नाम दिया गया है। हम एक ऐसे तत्वकी धारणा करने लगते हैं जो आध्यात्मिक है और जो पारलौकिक राज्यमें सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित है। साथ ही हम यह भी समझने लगते हैं कि, उनकी शक्ति उनके आध्यात्मिक अस्तित्वको उसके सम्पूर्ण रूपमें प्रदर्शित कर सकती है। वेदोंमें इस शक्तिको आत्मशक्ति या चित्शक्तिकी संज्ञा प्रदान की है। ये सारी शक्तियाँ एक सर्वोच्च शक्तिमें एकत्र समन्वित होती है जिसे वेदोंने परा-शक्तिका नाम दिया है। यथार्थमें भगवान् और उसकी शक्तियोंमें किसी भेदका निदर्शन नहीं प्राप्त होता। वे एक दूसरेसे अभिन्न हैं।

फिर भी विभिन्न कार्योंमें भगवान्की विभिन्न शक्तियोंका विभिन्न रूपोंमें निदर्शन प्राप्त होता है। इसे ही अचिन्त्य भेदाभेद प्रकाश कहा गया है। अर्थात् भेद एवं अभेदके अस्तित्वको धारणातीत रूपमें एक साथ जो हमारे समक्ष रख सके वही अचिन्त्यभेदाभेद है। श्रीहरि समस्त विधि-विधानोंसे परे हैं। वे किसी विधि-विधानके अन्तर्गत नहीं हैं। उनकी इच्छासे समस्त विधि-विधानोंकी रचना हुई है। वे अपनी समस्त शक्तियों का अपनी इच्छासे ही उपयोग करते हैं और उनकी शक्तियों द्वारा किये गये किसी भी कार्यका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता— वे किसी प्रकारके प्रभावकी पहुंचसे बाहर हैं। वे बुद्धिसे परे हैं। उनको बुद्धिसे समझा नहीं जा सकता। उन्हें तो नैसर्गिक सत्यके रूपमें अपनी अन्तरात्मामें ही अनुभव किया जा सकता है।

रसमहासागर—श्रीहरि

(३) वे रसके महासमुद्र हैं। इसकी परिभाषा यह है कि, रस एक ऐसा अलौकिक पदार्थ है जिससे स्थायीभाव, विभाव अनुभाव, सात्विक और संचारी भावोंका उद्भव होता है। विभावके दो प्रकार हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बनके दो प्रकार हैं—विषय और आश्रय। जिसमें स्थायी भावोंका उद्देग अधिक हो वही आश्रय कहा जाता है। स्थायी भावों द्वारा जो संचालित किया जाय वही विषय है। स्थायी भावको रति अर्थात् विशुद्ध आध्यात्मिक हृदयकी अभिरुचि बताया गया

है। आश्रय और विषयके साथ संपर्क होनेपर स्थायी भाव अपना प्रभाव दिखाने लगता है। जब स्थायी भाव अपना प्रभाव फैलाने लगता है तो स्थायी भावसे प्रभावित व्यक्तिमें कितने ही लक्षण प्रकट होने लगते हैं जिनको अनुभाव कहा जाता है। ये तेरह प्रकारके हैं। मनपर जिन आठ भावोंका प्रभाव पड़ता है उनको सात्विक भाव कहा जाता है यथा अश्रु, रुदन आदि। हर्ष, विषाद आदि अन्य ३३ भावोंको संचारी भावकी संज्ञा दी गई है। ये समस्त भाव अनुभाव, सात्विक भाव, संचारी भाव आदि मिलकर आत्मामें रसानुभूतिका स्वरूप धारण करते हैं। रसानुभूतिकी यह प्रणाली विषयोंमें लवलीन मनुष्यके हृदयमें उद्भव होनेवाले रसकी प्रणाली है। पर रस एक आध्यात्मिक तत्व है जो सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ श्रीहरिसे सम्बन्धित है। वेदोंमें कहा गया है 'रसो वै सः' अर्थात् श्री भगवान् ही 'रस' हैं। श्री भगवान् रसके समुद्र हैं। मानव हृदयमें इस रसकी एक बून्द ही समा सकती है। यथार्थमें रस आध्यात्मिक वस्तु ही है पर मायाके जंजालमें पड़े हुए और विषयोंमें अभिभूत प्राणीके हृदय में यह विकृत अवस्थामें उद्भूत होता है। इसके उद्भवसे सांसारिक विषयोंमें प्राणी आनन्द पाता है—उसे खुशी होती है कारण आत्मा मनमें लवलीन रहती है और मन विकृत रससे उद्भूत भावोंके अनुसार चलायमान होता है। मनमें उद्भव होनेवाले भाव ५ हैं और ये पाँच भाव पाँच उद्देश्योंकी सृष्टि करते हैं। इसी कारणसे अपने आध्या-

त्मिक स्वरूपके ज्ञानको भूलकर आत्माका अविद्याकी ओर झुकाव हो जाता है। जब आत्मा स्वयं अपने अन्तःकरणमें ही अनुभूति करने लगती है तब उसे आध्यात्मिक रसका आस्वादन प्राप्त होता है। ज्यों ज्यों आध्यात्मिक रसका विकास होने लगता है त्यों त्यों विकृत रसका हास होने लगता है। आध्यात्मिक रसके उद्भव होनेपर आत्माका झुकाव एक दूसरेके प्रति होने लगता है और सबका झुकाव सर्व सौन्दर्यपूर्ण श्रीहरिकी तरफ उन्मुख होता है। ऐसी स्थितिमें मानव भौतिक काल और स्थानकी भावनासे परे होकर वृन्दावनकी नैसर्गिक लीलाओंमें अवतरित होने लगता है। श्रीहरिकी आध्यात्मिक शक्ति अर्थात् चित् शक्तिमें अलौकिक रसोंका भण्डार है। चित् शक्तिकी ह्लादिनी भावधारा श्रीहरिको अनन्त आनन्द प्रदान करती है। चित् शक्ति (आध्यात्मिक बुद्धि) के संवित् उद्भवसे समस्त भाव, सम्बन्ध और प्रेम उत्पन्न होते हैं। चित् शक्तिकी सन्धिनी वृत्ति समस्त अस्तित्वोंकी सृष्टि करती है। आध्यात्मिक रसानुभूतिसे सम्बन्धित धाम, व्यक्तित्व और अन्य वस्तुएँ इसी सन्धिनी वृत्ति द्वारा उत्पन्न होते हैं। यह सारा प्रदर्शन चित् शक्ति अर्थात् आध्यात्मिक शक्तिके माध्यमसे ही होता है। समय, स्थान और विषयोंसे अभिभूत मायावादके लिये चित् जगत्में कोई स्थान नहीं है। यह चित् जगत् अर्थात् आध्यात्मिक जगत् वृन्दावनमें है। माया शक्ति चित् शक्तिकी विकृत छायामात्र है। इसीलिये मायिक जगत्की विशेषताओं और



श्रीकृष्ण चैतन्य परम्परा के दसवें आचार्य त्रिदण्डी स्वामी
परिव्राजक श्री श्रीमद् भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी जी महाराज ।

चित् जगत् । (आध्यात्मिक जगत्) की विशेषताओंमें समानता दिखाई पड़ती है पर यथार्थमें ये दोनों एक समान नहीं हैं । चित् जगत् मायिक जगत्का आदर्श है पर वे दोनों एक नहीं हैं । इनको अभिन्न नहीं कहा जा सकता है । दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं । मायिक जगत्के अनुभवसे चित् जगत्की कल्पना करनेके विचारोंसे हमें सतर्क रहनेकी आवश्यकता है । यह विचारधारा अद्वैतवाद (Pantheistic) है और इसे नास्तिकवाद (atheistic) भी कहा जा सकता है । आध्यात्मिक भाव-धारामें ओत प्रोत न होनेके कारण तर्क द्वारा इस प्रकार के सन्देहके उत्पन्न होनेकी आशंका होने लगती है । परन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक प्रेमके आनन्दकी उपलब्धि करना चाहते हैं उनको इन विचारोंको भ्रमात्मक मानकर त्याग देना चाहिये । श्रीकृष्णका नैसर्गिक रस चित् जगत्में आध्यात्मिक रूपमें वर्तमान है । हमलोग जिस अन्य जगत् में निवास करते हैं वहाँ एक पर्दा पड़ा हुआ है और वह हमारे चक्षुओं और श्रीकृष्णलीलाके महान् आध्यात्मिक तत्वोंके दर्शनमें बाधा देता रहता है । जब श्रीकृष्णकी अपार कृपासे वह पर्दा हट जाता है तब हम उस अलौकिक लीलाओंको देखनेकी सुविधा पा जाते हैं और जब उस सर्व-शक्तिमान्की इच्छासे पर्दा पुनः गिरा दिया जाता है तब वृन्दावनकी लीलायें अन्तर्ध्यान हो जाती हैं । इस विषयका चिन्तन करिये, इसका रसास्वादन करिये तब आपके भी विचार मेरे समान ही होने लगेंगे । भ्रातृ-वृन्द !

इस प्रकारके महत्वपूर्ण विषयको उचित और उदार परीक्षणके बिना मत छोड़िये ।

आत्मा—श्रीहरिका विभिन्नांश

(४) यह आत्मा श्रीहरिका विभिन्नांश है अर्थात् विभाजित अंग है । आत्मासे तात्पर्य समस्त प्रकारकी आत्माओंसे है चाहे वह पशु हो, मानव हो या देव (Celestial) हो । यह अवश्य जान लेना चाहिये कि, श्री महाप्रभु आत्माके अवस्थान्तर प्राप्ति (Transmigration) की अत्यन्त उदारतापूर्ण विचार-धारामें विश्वास करते थे । कितने ही पाठक इस विचारधाराको इसलिये नहीं स्वीकार करेंगे कि, कितने ही अन्यान्य धर्मावलम्बी इस विचारधाराकी पुष्टि नहीं करते । पर किसी भी विचारधारा को इसीलिये परित्याग कर देना उचित नहीं है कि, वह किसी सम्प्रदायकी विचारधाराके विरुद्ध है । यथार्थमें यह एक ऐसा विषय है जिसमें तर्क मध्यस्थता करनेका साहस नहीं कर सकता । यदि हम सूक्ष्मतापूर्वक परीक्षण करें तो हमें ऐसा कोई प्रबल कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि हम आत्माके देह-परिवर्तन (Transmigration) की विचारधारा पर अविश्वास कर सकें । दूसरी तरफ हमारा निर्दोष मन इसी विचारधाराका समर्थन करता है । मानवकी आत्मा जीवनमें एक बार ही अपने परीक्षणका अवसर पाती है, इस प्रकारका विश्वास अनुचित है, अनुदार है, अन्यान्यपूर्ण है और ईश्वर समस्त भलाइयोंके प्रतीक हैं इस विश्वास का विरोधी है । जब हमारे आध्यात्मिक

विचार इस विचारधाराकी पुष्टि करते हैं और हमारे वेदोंमें जो हमारी समस्त अनुभूतियोंके केन्द्र हैं—यह कहा गया है कि, यह आत्मा चिरस्थायी है—अमर है, अविनश्वर है, यह सृष्टि में किसी न किसी रूपमें सनातन वर्तमान रहती है। ऐसी स्थिति में हम आत्माके योनि या शरीर परिवर्तन (Transmigration) की विचारधारा पर कैसे अविश्वास कर सकते हैं। मनुष्य चाहे जितना भी शिक्षित एवं वैज्ञानिक क्यों न हो वह सर्वदा भूल कर सकता है। जो विचारधारा मानवके लिये अच्छी है, वह किसी राष्ट्र या किसी सम्प्रदायके लिये भी अच्छी है।

श्री चैतन्यके मतानुसार आत्मा परमात्माका अंग है। यह भगवान्की ही एक शक्ति है जिसके द्वारा ऐसी सृष्टि होती है जो यथार्थमें आध्यात्मिकतापूर्ण होती है पर वह 'माया' से अभिभूत भी हो सकती है। पर वह मायासे अभिभूत तभी होती है जब प्राणी इस बातको भुला देता है कि, वह यथार्थमें श्री भगवान्का ही नित्य सेवक है। यहाँ पर भगवान्की तुलना सूर्यसे की जा सकती है और ऐसी स्थितिमें आत्माएँ सूर्यकी किरणोंके आणविक अंशके रूपमें मानी जा सकती हैं। सूर्यकी किरणें स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशित नहीं हो सकती। जब तक भगवान्की दूसरी उपयुक्त शक्तिका सहारा इन किरणोंको नहीं मिलता तब तक ये किरणें स्वयं कुछ भी करने में असमर्थ हैं। 'अंग' शब्दका यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिये कि यह कोई कुल्हाड़ीसे काटे हुए किसी पत्थरके एक अंशके समान है—पर

यह तो उस चिरागके समान है जो किसी दूसरे चिरागसे अपने को प्रकाशित करता है या हमारे प्राचीन महापुरुषोंके विश्वास के अनुसार किसी रसायनिक पत्थरसे उत्पन्न हुए स्वर्णके समान है। आत्माओंकी तुलना प्रज्वलित आगके पृथक्-पृथक् आणविक विस्फोट (Emanations) से भी की जा सकती है। प्रत्येक आत्माने अपने प्रमुख श्रोत अर्थात् परमात्मासे अपना अंश ग्रहण किया है और उसे अपनी स्वतन्त्र इच्छाका अत्यन्त अल्पअंश ही मिला है। ये आत्माएँ चित् जगत् और मायिक जगत् के बीचमें यथार्थतः अवस्थित हैं। जो व्यक्ति अपने प्रभुकी सेवाको ही अपना कर्त्तव्य मान लेते हैं वे सर्वोच्च चित् शक्तिकी ह्लादिनी वृत्ति द्वारा पतन से बचा लिये जाते हैं। वे नाना प्रकार से नाना रूपोंमें श्रीहरिके सनातन सेवकोंमें गिने जाने लगते हैं। उनको माया और कर्मचक्र द्वारा उत्पन्न संकट नहीं सताते— उनको इन संकटोंकी जानकारी ही नहीं होती। जो सुख भोग करनेकी अभिलाषा करने लगते हैं माया उन्हें अपने में जकड़ लेती है। वे मायाके कर्मचक्रके फंदेमें फँस जाते हैं। इस मायाके चक्रसे उनको तभी मुक्ति मिलती है जब वे पुनः अपने यथार्थ स्वरूप श्रीहरिके सेवकरूपको हृदयंगम करने लगते हैं। ये आत्माएँ चाहे वे मायासे मुक्त हों या मायासे आवद्ध हों श्री हरि पर आश्रित उनके ही पृथक् अँग रूप हैं। श्रीहरि मायाघोश हैं—वे माया के प्रभु हैं और उनकी इच्छासे ही माया उनकी सेवा करती है। आत्मा या जीवकी व्युत्पत्ति इसी रूपमें हुई है।

कि, वह मायासे अभिभूत की जा सके। जब श्रीहरिकी ह्लादिनी शक्तिका कोई सहारा नहीं मिलता तब शक्तिके अभावमें आत्मा मायासे अभिभूत हो जाती है। इसीलिये ईश्वर और जीवमें नैसर्गिक और सनातन भेद है जिसे किसी भी अद्वैतवादी (Pantheistic) विचारधारा द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है। कृपा करके इस प्रकारके भ्रमात्मक प्रश्नोंको परित्याग कर दीजिये कि, 'इन जीवोंकी सृष्टि कब हुई थी और इनको कब प्रभावित किया गया था?' आध्यात्मिक इतिहासमें मायिक युगका कोई अस्तित्व ही नहीं है कारण जब जीव विषयोंमें अभिभूत हो जाते हैं तब इसका प्रारंभ होता है। अतः आप इस प्रकारके विषयोंमें मायिक वंशावलियोंका उपयोग नहीं कर सकते।

श्रीहरिकी मायासे आवद्ध आत्माएँ

(५) कितनी ही आत्माएँ प्रकृतिसे ओत प्रोत हैं। प्रकृति, ईश्वरकी माया, प्रधान, प्रपंच और अविद्या एक ही के विभिन्न रूपों और विभिन्न कार्योंके कारण विभिन्न नाम हैं। सर्वोच्च स्वरूप शक्तिसे भिन्न माया किसी भी रूपमें स्वतंत्र शक्ति नहीं है। वह सर्वोच्च शक्तिका बाहरी रूप मात्र है। जो लोग श्री भगवद् विमुख हैं उनको भगवान्ने जिस दण्डकी आज्ञा प्रदान की है—उसी आज्ञाका यथोचित रूपमें पालन कराकर माया शक्ति भगवान्की सेवामें लगी हुई है। यथार्थतः माया श्री भगवान्के सुधार विभागको संभाले हुए हैं। वे प्राणी या जीव

अपनी-अपनी रुचिके वशीभूत होकर इस तथ्यको भूल जाते हैं कि, वे श्रीभगवान्के नित्य सेवक हैं और यह सोचने लगते हैं कि भोग विलासोंका आनन्द वे स्वयं ही उपभोग कर लेंगे, उनको माया अपने प्रपंचोंमें जकड़ लेती है और उनको दण्ड देकर उनका सुधार करती है। मायाके तीन गुण हैं—सात्विक, राजस और तामस। ये गुण श्रीभगवद्विमुखोंको बाँधनेके लिये साँकलोंका काम करते हैं। माया आत्माके आध्यात्मिक स्वरूप पर दो प्रकारसे अधिकार किये हुए है। ये दो प्रकार लिंग और स्थूल नामसे अभिहित होते हैं। मायाके अस्तित्वमें २४ पदार्थ समन्वित हैं। पंचतत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। पाँच प्रकारके विशेष धर्म हैं—ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि, आस्वादन और गन्ध। दश इन्द्रियाँ हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—यथा—कर्ण, चक्षु, नासिका, जिह्वा और स्पर्श और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं यथा हाथ, पाँव आदि। इन बीसों द्वारा स्थूलकी रचना होती है अर्थात् बाह्य रूप प्रस्तुत होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारोंसे लिंग देह अर्थात् आभ्यन्तरिक रूपकी रचना होती है। तत्पश्चात् माया आत्माके आध्यात्मिक स्वरूप को आवृत्त करके पतित आत्माओंको कार्यमें नियोजित करती है। मायाके कार्योंके तीन स्वरूप हैं—कर्म, अकर्म, विकर्म। कर्म उन कार्योंका नाम है जो पुण्यार्जन या धर्म संचयके लिये किये जाते हैं। यथा स्मार्तों द्वारा निर्धारित वर्णाश्रम धर्मके समस्त कर्तव्योंका पालन करना। अकर्म कर्तव्योंके पालन न

करनेको कहा जाता है। विकर्म पाप या अपराधको बताया गया है। कर्मों द्वारा स्वर्ग लाभ होता है और प्राणी ब्रह्मलोक तक पहुँच सकते हैं। अपने अपने कर्मोंके अनुसार उनका क्रमशः उत्थान होता जाता है। अकर्मों द्वारा इस मृत्युलोकमें ही प्राणीको दुःख भोग करना पड़ता है। विकर्म आत्माको नरकमें ढकेल देते हैं। जिन आत्माओंका पतन हो जाता है वे अपने लिंग देहमें एक शरीरसे दूसरे शरीरमें घूमती रहती हैं और कर्म या विकर्म करती रहती हैं। वे स्वर्ग तक जाती हैं और जब उनके संचित पुण्यकी समाप्ति हो जाती है तब फिर मृत्युलोकमें आ जाती हैं। वे नरकमें जाती हैं और वहाँ अपने विकर्मोंका दण्ड भोग कर फिर कर्मोंको करनेके लिये इस धरातल पर पहुँच जाती हैं। इस प्रकार पतित आत्माओंकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। वे सुखोंका उपभोग करती हैं और कष्ट पाती हैं। वे संहार करती हैं, हत्या करती हैं और इसी प्रकार जीवन यापन करती रहती हैं। कभी राजकुमारोंकी तरह मुस्कराते हुए उनका जीवन कटता है और कभी कष्ट सहते-सहते नाश हो जाता है। अतः यह संसार एक प्रकार का कैद खाना है—सुधारका केन्द्र है। जैसा कि, कुछ व्यक्तियों ने समझ रखा है, यह आनन्द उपभोग करनेका स्थान नहीं है।

मायापाश से मुक्त आत्माएँ

(६) कितनी ही आत्माएँ प्रकृतिकी पकड़से मुक्त होती हैं। माया राज्यके मार्गोंपर जीव अनन्त समयसे भ्रमण कर रहा

है। उनको सब प्रकारके सुखों और दुखोंकी अनुभूति प्राप्त होती जा रही है। इस प्रकारके निरानन्द अस्तित्वसे किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है? किसी भी धर्म, कर्त्तव्योंके पालन, योग, स्थूल शक्तिके विकास, लिंगशक्तिके विकास, सांख्य और यह भावना कि, वह एक आध्यात्मिक पुरुष है और वैराग्य अर्थात् (संसारके समस्त सुखोंका परित्याग कर देना) आदि किसीके भी द्वारा मानव जो चाहता है वह उसे प्राप्त नहीं हो सकता। जब मानव किसी ऐसे वैष्णवके सम्पर्कमें आता है जिसका हृदय हरि भक्ति रसामृतसे परिपूर्ण है तब वह भक्तिके मधुर सिद्धान्तोंके अमृतपानसे प्यार करने लगता है और उसके पद चिह्नोंपर चलकर निरन्तर श्रीकृष्ण भक्तिके तत्वों के अनुशीलनकी ओर उसकी प्रवृत्ति होती जाती है। इसके द्वारा वह धीरे-धीरे अपनी मायिक अवस्थितिको संशोधित करता जाता है और अन्तमें अपने यथार्थ स्वरूपको प्राप्त करके वह उस मधुरतम रसका आस्वादन करने लगता है जो आत्माका चरम लक्ष्य है। मानवके लिये अपने चरम उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सत्संग अर्थात् आध्यात्मिक पुरुषोंका साथ ही एकमात्र साधन है। भक्ति एक ऐसा सिद्धान्त है जो एक आत्मासे दूसरी आत्माको उपलब्ध होता रहता है। यह बिजलीका करेण्ट है जो एकसे दूसरेमें प्रवेश करता रहता है। भक्तिका प्रवाह एक उपयुक्त आत्मासे दूसरी उपयुक्त आत्माकी ओर प्रवाहित होता रहता है। जीवनके प्रत्येक कार्यमें श्री भगवान् पर सम्पूर्ण रूपसे निर्भर

रहना ही भक्ति है। कर्तव्य पालनका सिद्धान्त भक्तिपर घटित नहीं होता कारण यह किसी फल लाभकी कृतज्ञताके परिवर्तनमें किया जाता है और यह धर्म बन्धनके रूपमें पालित होता है जो नैसर्गिक प्रीतिके विपरीत है। इस नश्वर संसारमें नैतिकताका सिद्धान्त यद्यपि अपनी तौर पर सुन्दर है पर इसीसे अन्तमें कदाचित् ही आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हो पाती है। श्री भगवान् के सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ मनोहर रूपमें विश्वास, उनकी निस्वार्थ सेवाके लिये उत्कट और एकमात्र अभिलाषा और अन्य किसी भी सुख या स्वार्थकी पूर्तिके विचारोंका सम्पूर्ण रूप से परित्याग—इन तीन सिद्धान्तों द्वारा श्रद्धाका उद्भव होता है अर्थात् भक्तिके प्रति यथार्थ अनुरागका उद्भव होता है। नैसर्गिक तौर पर भक्ति अनन्या होती है। क्या भक्ति किसी विशेष अवसरसे प्राप्त होती है? नहीं; ऐसा नहीं है इसकी प्राप्ति के लिये सुकृति अर्थात् अच्छे कार्य, सत्कार्य प्रमुख रूपसे आवश्यक हैं। अच्छे कार्योंके दो प्रकार हैं। एक प्रकार तो वह है जिसे हम नैतिकताकी संज्ञा देते हैं। इसमें वे समस्त कार्य अन्तर्निहित माने जाते हैं जिनके करनेसे धर्म और समृद्धि प्राप्त होती है। दूसरे प्रकारके सत्कार्योंमें वे समस्त कार्य समन्वित समझे जाने चाहिये जिनसे आध्यात्मिक संस्कृतिकी ओर झुकाव होता जाता है। पिछले प्रकारके सुकार्य हमें यथार्थ और अनन्या-भिलाषी वैष्णवके सम्पर्कमें पहुँचा देते हैं जिनके द्वारा प्रथमतः हमें श्रद्धाकी उपलब्धि होती है और ईश्वरमें उत्कट विश्वासका

उद्भव होता है। आगे चलकर जब हम भक्तिके अधिकारी होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं तब हमें उन्हीं वैष्णव महापुरुष से जो हमारे यथार्थ गुरु होते हैं भक्तिकी विचारधाराका आभास मिलने लगता है।

आध्यात्मिक और भौतिक दृश्य—श्रीहरिके अचिन्त्य भेदाभेद का प्रकाश मात्र हैं

(७) सभी आध्यात्मिक और भौतिक दृश्य सर्वशक्तिमान् श्री हरिके अचिन्त्य भेदाभेदका प्रकाश है। वेदोंमें कहीं कहीं पर यह प्रमाणित करनेका प्रयास किया गया है कि, जीव ईश्वर से भिन्न है और कहीं कहीं पर यह बताया गया है कि, जीव और ईश्वरमें किसी प्रकारका भेद नहीं है—वे एक ही है। यथार्थमें वेद सदा सत्यका ही उद्घोष करते हैं। जीव ईश्वरसे भिन्न और अभिन्न दोनों ही हैं। युक्तिवादी या हेतुवादी इसे समझनेमें असमर्थ हैं। अतः यह निश्चयात्मक रूपमें कहा जा सकता है कि, मानव धारणासे बाहर अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा ईश्वर जीव और संसारसे भिन्न भी हैं और सब समय उनसे अभिन्न भी हैं। वेदान्त हमें शक्ति परिणामवादकी शिक्षा देता है न कि, भ्रमसे परिपूर्ण शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित विवर्तवादकी। शंकरके उपदेशोंकी अनेक प्रकारसे व्याख्या की गई है। कितनों ही का कथन तो यह है कि, यह विश्व और जीव दोनों ही ईश्वरसे उत्पन्न हुए हैं और कितने ही व्यक्ति यह

प्रमाणित करते हैं कि, यह विश्व और जीव और कुछ नहीं सिर्फ ईश्वर का विकास मात्र है। शंकराचार्यने ब्रह्मपरिणाम अर्थात् ईश्वरके विश्वके रूपमें बदल जानेके सिद्धान्तको मान्यता न देनेके उद्देश्य से यह कहा है कि, व्यासने हमें विवर्तवादकी शिक्षा दी है। विवर्तवादका तात्पर्य यह है कि, ईश्वरके स्वरूपमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता यह माया ही है जो कि, ईश्वरका ही एक अंश है—इस विश्वकी रचना किया करती है। अविद्या और अज्ञान पर भी ईश्वर की परछाईं पड़ती है कारण, ईश्वरके सिवाय अन्य किसी वस्तुका अस्तित्व चिरस्थायी नहीं है। ये सब दुर्बोध्य और अर्थहीन तर्क हैं। इन तर्कोंका कोई महत्व नहीं है। यह स्पष्ट है कि, वेदान्त हमें यह सिखाता है कि, ईश्वर अपरिवर्तनशील है और उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वह परिवर्तनकी कल्पनासे बाहर है। उसकी शक्ति ही अपने परिणाम अर्थात् परिवर्तन द्वारा इस भौतिक जगत् और जीवकी सृष्टि करती है। इसके उदाहरण स्वरूप हम किसी रासायनिककी कसौटीके पत्थरको ले सकते हैं जिसकी शक्ति सुवर्णका स्वरूप धारण करके उसके खरे-खोटेकी पहिचान करा देती है पर वह पत्थर उसी प्रकार अपरिवर्तनीय ही रह जाता है। वह स्वयं सोनेमें परिवर्तित नहीं होता है। इसी प्रकार भगवान्की चित् शक्ति अपने अलौकिक रसकी समस्त विशेषताओंके साथ चित् जगत् का स्वरूप धारण कर लेती है और जीवशक्ति असंख्य जीवोंके रूपमें दिखाई पड़ने

लगती है। इन जीवोंमेंसे कितने ही पार्षदोंके रूपमें वैकुण्ठमें रह जाते हैं और बाकी विभिन्न स्वरूपों, आकारों एवं योनियोंमें इस विश्वमें रमते रहते हैं। इनमेंसे प्रत्येकको अपनी-अपनी विभिन्न परिस्थितियोंमें जीवनयापन करना पड़ता है। माया-शक्ति पवित्र आत्माओंके निवास और अपने-अपने कर्मोंके फल को भोगनेके लिये अनेक विश्वोंकी रचना करती है। विवर्तवाद निस्सन्देह ही एक गलत सिद्धान्त है, वह भ्रामक है और वेदोंकी शिक्षाके बिलकुल विरुद्ध है। शक्ति परिणामवाद ही एकमात्र सत्य सिद्धान्त है और यह इस तथ्यका समर्थन करता है कि, आध्यात्मिक प्रेम सनातन है, नित्य है, अविनश्वर है। यदि विवर्तवादको सत्य मान लिया जाय तो इसका स्वाभाविक परिणाम यही होगा कि, हमें यह घोषित कर देना होगा कि, आध्यात्मिक प्रेम एक अस्थायी सिद्धान्त है।

अध्यात्म के चरम लक्ष्यकी उपलब्धिका एकमात्र

साधन—भक्ति

(८) आध्यात्मिक अस्तित्वके प्रधान और चरम उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये भक्ति ही एकमात्र साधन है। कर्मोंकी व्यवस्था जिस प्रकारकी है, उनके द्वारा प्रत्यक्षमें और शीघ्रतासे आध्यात्मिक परिणामपर पहुँचना कठिन है। कर्मोंके द्वारा यदि कुछ हो भी सकता है तो वह भक्तिके माध्यमसे ही हो सकता है। अतः भक्ति स्वतन्त्र है और कर्म एवं ज्ञान अन्य पर आश्रित

सिद्धान्त हैं। 'मानव एक आध्यात्मिक प्राणी है' इस प्रकारका ज्ञान हमें अपने चरम लक्ष्य तक नहीं पहुँचाता। भक्तिकी सहायतासे ज्ञान हमें अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचानेमें समर्थ हो सकता है। अतः भक्ति ही चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये एकमात्र साधन है। भक्तिकी यही व्याख्या है। भक्ति श्रीकृष्णके साथ मैत्रीका सम्पर्क कायम करनेका दूसरा नाम है। अपने आध्यात्मिक विकासके लिए अन्य किसी भी प्रकारकी अभिलाषासे यह रहित है। यह अन्त्याभिलाषिता शून्य है। कर्म और ज्ञानके किसी भी प्रकारके उपादानोंसे इसका कोई संपर्क नहीं है। यह एक परम विशुद्ध तत्व है। इसमें किसी प्रकारका मिश्रण नहीं है। यह प्रत्यक्ष देखनेको मिलता है कि, भक्ति एक अनुभूति भी है और साधन भी है। यह अनुभवजन्य भी है और कर्मसाध्य भी है। भक्तिके तीन क्रम हैं—साधन भक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति। साधन भक्ति साधककी उस अवस्था का नाम है जब तक कि, साधकके हृदयमें अनुभूतिका उद्भव नहीं हुआ हो। भावभक्तिमें अनुभूतिका उद्भव हो जाता है और साधक श्री भगवद्‌रसामृतका आस्वादन करने लग जाता है और प्रेमभक्तिमें अनुभूति सम्पूर्ण रूपसे कार्यरत हो जाती है—उसमें तत्परता आ जाती है। प्रेमके आध्यात्मिक लक्ष्यकी उपलब्धिके लिये भक्ति आध्यात्मिक अनुभूति है। साधन भक्ति के दो प्रकार हैं—एकका नाम वैध साधन भक्ति है और दूसरेका रागानुगा साधन भक्ति है। वैध शब्दकी उत्पत्ति विधि अर्थात्

नियमसे हुई है। जब शास्त्रोंके नियमोंके प्रभावसे भक्तिका उद्भव होता है तब उसे बंध भक्ति कहा जाता है और यह तभी तक कार्यकारी होती है जब तक कि, अनुभूतिका उद्भव नहीं होता। जब मानव स्वाभाविक रूपमें स्वयं आग्रहान्वित होकर श्रीकृष्णसे प्रेम करने लगता है तब रागका उद्भव होता है। अन्तःकरणके प्रभुकी सेवा करनेकी उत्कट अभिलाषाका ही नाम राग है। इस साधनकी मधुरता, सुगमता और सरलता से जो आकृष्ट हो जाता है वही इस मार्गका अनुसरण करता है और उसमें श्रीकृष्णानुभूतिके लिये नैसर्गिक प्रेरणाका सर्जन होता है। इसीका नाम रागानुगा साधन भक्ति है। बैधी साधन से यह साधन अधिक शक्तिशाली है। श्रीकृष्णके साथ मैत्रीका सम्पर्क स्थापित करनेके लिये भक्तिके नौ प्रकार हैं। यथा—

- (१) श्रीकृष्ण नाम, स्वरूप, गुण और लीलाओंका श्रवण।
- (२) श्रीकृष्ण नाम, स्वरूप, गुण और लीलाओंका कीर्तन और वर्णन करना।
- (३) श्रीकृष्ण नाम, स्वरूप, गुण, लीलाओंका मनन और निरन्तर चिन्तन करना।
- (४) श्री भगवान्के पुनीत चरणोंकी सेवा करना।
- (५) श्रीभगवद्दर्चना।
- (६) श्री भगवान्के चरणोंमें प्रणति।
- (७) उन समस्त कार्योंको करना जो ईश्वरको प्रसन्न कर सकें।

(८] श्रीभगवान्के साथ मैत्री ।

(९) श्रीभगवान्को आत्म-समर्पण ।

उपरोक्त ६ प्रकारके साधनोंमें श्रीकृष्णके नाम, यश और गुणों आदिका कीर्तन और वर्णन ही सर्व श्रेष्ठ है। पूजाके इन विविध स्वरूपोंके लिए थोड़ा बहुत ज्ञान ही आवश्यक है। इसमें निष्फल तर्कोंको अपने पास कभी फटकने न देना चाहिये। कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो श्रीमूर्तिकी पूजाके विषयमें ही कुतर्क करना प्रारम्भ कर देते हैं और कहते हैं कि 'श्रीमूर्तिकी पूजा एक प्रकारकी पौत्तलिकता ही है। श्री मूर्ति किसी कलाकार द्वारा निर्मित एक प्रतिमा ही तो है। इसे शैतान ने स्वयं प्रचलित किया है। इस प्रकार प्रतिमाकी पूजा करनेसे ईश्वरमें ईर्ष्याका उद्भव होता है और उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता सीमित हो जाती है।' ऐसे व्यक्तियोंसे हमारा यह कहना है कि, बन्धुगण ! हम इस प्रश्न को पूर्ण रूपसे समझते हैं। अपनेको साम्प्रदायिक मतवादों द्वारा भ्रम में न पड़ने दीजिये। ईश्वर कभी ईर्ष्यालु नहीं होता, कारण वह एक ही है—दूसरा उसके जैसा नहीं है। वह अनन्य है। वह अनेक नहीं है। जब एक ही है तो किससे ईर्ष्या की जा सकती है ? अतः ईर्ष्या का प्रश्न ही भ्रान्तिमूलक है। शैतान कल्पनाकी वस्तुके सिवाय अन्य कुछ नहीं है या वह किसी रूप कथाकी विषय-वस्तु है। एक काल्पनिक प्राणीको भक्तिमें बाधा देनेके लिये कभी भी खड़ा नहीं करना चाहिये। जब वह स्वयं ही काल्पनिक है—

यथार्थ नहीं है तब उसकी बाधा तथ्य हीन है—उसमें कुछ भी सार नहीं है। जो लोग ईश्वर को अपौरुषेय माननेमें विश्वास करते हैं वे उसे साधारणतः किसी प्राकृतिक वृत्ति या किसी शक्तिके रूपमें समझने लगते हैं पर यथार्थतः ईश्वर प्रकृति, उसके विधान एवं विधि से परे है। उसकी पवित्र इच्छा ही कानून है, विधान है। सर्वशक्तिमत्ता, सर्व व्यापकता और सर्वज्ञताके गुणों में उसके असीमित गुणोंको सीमित मान लेना एक प्रकारसे अपराधमें ही गिना जायगा। इस प्रकारके गुणोंका अस्तित्व समय (काल) स्थान आदिमें ही वर्तमान रहता है। भगवान्की श्रेष्ठता इसीमें है कि, उसमें एक दूसरेकी विरोधी माने जाने वाली शक्तियों एवं वृत्तियोंका समन्वय है और वे अपने अलौकिक स्वरूपसे या अलौकिक गुणोंसे उन शक्तियों एवं वृत्तियोंका संचालन करते हैं। वे अपने सर्व माधुर्यपूर्ण व्यक्तित्वसे अभिन्न हैं और उनमें सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताकी ऐसी शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं जिनको दूसरे किसीमें उपलब्ध नहीं किया जा सकता। ये शक्तियाँ, वृत्तियाँ, गुण अन्य किसीमें भी नहीं होते। आध्यात्मिक जगत्में सनातन रूपमें उनका पवित्र और पूर्ण व्यक्तित्वतो वर्तमान है ही पर साथ-साथ प्रत्येक सृष्ट पदार्थ और स्थानमें भी उनका अस्तित्व सम्पूर्ण रूपमें वर्तमान है। यह विचारधारा ईश्वरके सम्बन्धकी अन्य समस्त विचार-धाराओंसे श्रेष्ठतम है। महाप्रभुने भी स्वयं पौत्तलकिताका विरोध किया है पर श्रीमूर्तिकी पूजाको आध्यात्मिक संस्कृति एवं



श्री गौरकुण्ड तटवर्ती श्री महाप्रभुका जन्मस्थान
श्री योगपीठ मन्दिर (श्री मायापुर)

ज्ञान प्राप्ति का अत्युत्तम साधन माना है। यह बताया जा चुका है कि, ईश्वर पौरुषेय और सर्व माधुर्यपूर्ण है। व्यासादि ऋषियों ने अपने आत्मचक्षुओंसे उनके इस अलौकिक सौन्दर्यको देखा है। उन्होंने अपने ग्रंथोंमें उस श्रीमूर्तिके दर्शन करके उस अलौकिक श्रीकृष्णके स्वरूपका भी वर्णन किया है। यह हो सकता है कि, शब्दोंमें भौतिक विषयोंकी स्थूलता ही अधिक होती है पर इन वर्णनोंमें सत्य स्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ता है। इन वर्णनोंके अनुसार ही श्रीमूर्तिका निर्माण होता है और हम अत्यन्त आनन्दके साथ अपने हृदयमें बसे हुए भगवान्का उसमें दर्शन पाते हैं। भ्रातृगण ! क्या यह गलत या पापमय है ? जो व्यक्ति यह कहते हैं कि, ईश्वरका भौतिक या आध्यात्मिक कोई त्वरूप नहीं है और यह कहते हुए भी पूजाके लिये किसी असत्य स्वरूपकी कल्पना कर लेते हैं—यह पौत्तलिकता है। परन्तु जो लोग अपने आत्मचक्षुओंसे ईश्वरके आध्यात्मिक स्वरूपका दर्शन करते हैं वे यथा सम्भव उस स्वरूपको अपने हृदयमें विराजमान कर लेते हैं और तब भौतिक चक्षुओंके सन्तोषके लिये उस स्वरूपको इसलिये अंकित करते हैं कि, उस सर्वश्रेष्ठ अनुभूतिको निरन्तर उपलब्ध करते रहें, वे किसी भी रूपमें पौत्तलिक नहीं माने जा सकते। उनको पौत्तलिक कहना अनुचित है। श्रीमूर्तिका दर्शन करते समय सिर्फ प्रतिमाका ही अवलोकन नहीं करना चाहिये। परन्तु उसके आध्यात्मिक स्वरूपको लक्ष्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही आप विशुद्ध आस्तिक हो सकते हैं। पौत्तलिकता

और श्रीमूर्तिकी पूजा दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु हैं। पर मेरे भ्राताओ ! शीघ्रताके कारण आप एकको दूसरेके साथ मिला देते हैं। यदि मैं आपसे यथार्थ बात कहूँ तो यही कहूँगा कि, श्रीमूर्तिकी पूजा ही श्री भगवान्की यथार्थ पूजा है। इस पूजाके बिना आप अपनी धार्मिक भावनाओंको यथेष्ट अग्रसर नहीं कर सकते। आपका ज्ञान आपको संसारके प्रति आकर्षित करता रहता है और जब तक आप अपने ज्ञानके चरम लक्ष्य श्री भगवान्का दर्शन नहीं पायेंगे, तब तक आपकी परिस्थिति प्रतिकूल ही बनी रहेगी। इन प्रतिकूल परिस्थितियों द्वारा आपको अपने आध्यात्मिक श्रेष्ठत्वकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिल सकती। अपने घरमें श्रीमूर्तिकी प्रतिष्ठा करिये। यह सोचने लगिये कि, सर्वशक्तिमान् ईश्वर आपके घर के रक्षक हैं—प्रभु हैं—स्वामी हैं। जो अन्न आप खाते हैं वह उनका ही प्रसाद है। पुष्प और उसकी सुगन्धि भी उनका ही प्रसाद है। चक्षु, कर्ण, नासिका स्पर्श और जिह्वा—इन समस्त ज्ञानेन्द्रियोंकी अपनी आध्यात्मिक संस्कृति है। इनमें आध्यात्मिकता अन्तर्निहित है। आप श्रीमूर्तिकी पूजा अपने पवित्र अन्तःकरण से करिये और ईश्वर उसे समझ लेंगे और आपकी साधुताके अनुसार आपके विषयमें अपना निर्णय करेंगे। इन विषयोंमें शैतान आपका कुछ भी नहीं कर सकता। श्रीमूर्तिकी पूजाके सिद्धान्त पर ही समस्त पूजायें आधारित हैं। धर्मके इतिहासका अवलोकन कीजिये और आपको यह यथार्थ सत्य सम्पूर्ण रूपमें

समझमें आ जायगा । ईसाके पूर्वके यहूदीवादके युगमें और ईसाके बादके ईशाई मतवाद और इस्लाम धर्मके युगमें धर्माध्यक्ष ईश्वररूपी जो विचारधारा है वह श्रीमूर्तिकी सीमित विचारधाराके सिवाय अन्य कुछ नहीं है । ग्रीकोंमें जोभके राजतन्त्रकी विचारधारा और आर्य कर्मकाण्डियोंमें इन्द्र सम्बन्धी धारणा उसी सिद्धान्तका एक सूक्ष्म दृष्टिकोण है । मीमांसकोंका ज्योतिर्मय ब्रह्म और एक शक्तिकी कल्पना एवं शाक्तोंकी निराकार शक्ति सम्बन्धी विचारधारा भी श्रीमूर्तिका अत्यन्त सूक्ष्म आभास मात्र है । यथार्थमें श्रीमूर्तिका सिद्धान्त सत्य है । विभिन्न व्यक्तियोंमें उनके विभिन्न विचारों और विभिन्न दृष्टिकोणोंमें यह विभिन्न रूपोंमें प्रतिभासित हुआ है । जेमिनी और कोमटे (Comte) ने भी—जो सृष्टिकर्ता ईश्वर को किसी प्रकार की मान्यता देनेके लिये विलकुल प्रस्तुत नहीं हैं श्रीमूर्तिके कितने ही स्वरूपोंका वर्णन किया है । अपने अन्तःकरणके आभ्यन्तरिक आह्वानसे ही वे लोग इस प्रकार का वर्णन करनेके लिये विवश हुए हैं । इसके बाद हमारे सामने वे व्यक्ति भी हैं जिन्होंने क्रॉस, शालिग्राम शिला, लिंग और इसी तरहके अनेक चिह्नोंको अपनी अपनी श्रीमूर्तिकी विचारधाराके निदर्शन के रूपमें धारण कर रखा है । दूसरी बात यह है कि, जब ईश्वरीय करुणा, प्रेम और न्यायको हम कलम द्वारा अंकित कर सकते हैं तब हम मानव कल्याणके लिये ईश्वरके सौन्दर्य, माधुर्य और अन्यान्य समस्त भावोंको कवितामें, चित्रोंमें या मूर्तियोंमें

क्यों नहीं अंकित कर सकते हैं ? यदि शब्दों द्वारा विचारोंकी अभिव्यक्ति की जा सकती है, घड़ी द्वारा समयकी जानकारी प्राप्त हो सकती है, एवं चिह्नों द्वारा इतिहासका विवरण प्राप्त हो सकता है तब चित्रों या प्रतिमा द्वारा उस अलौकिक भगवान्के लोकोत्तर सौन्दर्य, श्रेष्ठ विचारों और भावोंकी अनुभूति क्यों नहीं प्राप्त हो सकती है ?

श्रीमूर्तिपूजकों को हम दो श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं—(१) ध्यानवादी (२) स्वरूपवादी । जो व्यक्ति स्वरूपवादी विचार-धाराके माननेवाले हैं वे अपने जीवनकी परिस्थितियों एवं मन की वृत्तियोंके अनुसार मन्दिरोंकी स्थापनाके अधिकारी हैं । जो अपनी-अपनी मानसिक स्थिति और परिस्थितियोंके अनुसार श्रीमूर्तिकी पूजा अपने अन्तःकरणमें ही करना चाहते हैं, वे मन्दिर प्रतिष्ठानोंके प्रति यथोचित श्रद्धा रखते हुए अपना सारा ध्यान श्रवण और कीर्तनके माध्यमसे पूजा करनेकी ओर ही लगाते हैं । उनका मन्दिर विश्वमय होता है और उसमें जाति भेद और रंगभेदके लिये कोई स्थान नहीं रहता । उनकी पूजामें जाति और रंगको कोई नहीं पूछता । महाप्रभु इसी पिङ्गली श्रेणीको विशेष रूपसे मान्यता देते थे और इसीका उल्लेख उन्होंने अपने शिक्षाष्टकमें किया है । आत्म-समर्पणकी भावनासे श्री भगवान्की निरन्तर पूजा करिये और बहुत अल्प समयके भीतर ही आपको श्रीकृष्ण-प्रेमका आशीर्वाद प्राप्त होगा ।

ईश्वर-प्रेम ही आध्यात्मिक अस्तित्व का चरम लक्ष्य

(६) ईश्वर प्रेम ही आध्यात्मिक अस्तित्वका चरम उद्देश्य है। कर्ममार्गी यह घोषणा करते हैं कि, इस जगत्में आनन्दका उपभोग और इसके बाद स्वर्गकी उपलब्धिमें ही मानवकी इच्छा की पूर्णता है। मानव यही चाहता है। इसके सिवाय उसकी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। कर्म दो प्रकारके हैं—(१) वे कर्म जो किसी भौतिक लाभकी आशासे किये जाते हैं और (२) वे कर्म जो सिर्फ श्री भगवान्की प्रीति पानेके लिये किये जाते हैं। कर्ममार्गियोंके दृष्टिकोणमें दोनों प्रकारके ही कर्म सुख भागोंकी उपलब्धिके लिये हैं। वे ईश्वरकी पूजा इसीलिये करते हैं कि, उनसे आनन्द और सुखोंकी प्राप्ति हो। भक्ति और कर्ममें यही भिन्नता है। भक्तिके समस्त कार्योंका चरम लक्ष्य प्रेम भक्तिको प्राप्त करना है और कर्मका चरम लक्ष्य सुखोंकी उपलब्धि है। दूसरी तरफ ज्ञानमार्गी ज्ञानकी साधना इसीलिये करते हैं कि, उनको मुक्ति मिल जाय। वे अपनी साधनाका चरम लक्ष्य मोक्षको मानते हैं। मुक्ति दो प्रकार की मानी गई है। मुक्ति का एक प्रकार यह है कि, अपनी आत्मा को सम्पूर्ण रूपसे ईश्वरमें विलीन कर देना अर्थात् अपनी आत्माका ईश्वरसे पृथक् अस्तित्वको मिटा देना। मुक्तिकी दूसरी धारणा यह है कि, उसमें आत्माका जो नित्य भिन्न रूप है वह बना रहता है और जब मोक्षकी प्राप्ति होती है तब आत्मा सालोक्यको प्राप्त कर चित् जगत्में चली जाती है अर्थात् ईश्वरके चित् क्षेत्रमें

निवास करने लगती है। उनको ईश्वरका सामीप्य प्राप्त होता है। इसके साथ ही ईश्वरके जैसा ही आध्यात्मिक स्वरूप भी प्राप्त होता है जिसे शास्त्रोंमें स्वारूप्य कहा गया है। ईश्वरकी शक्तियोंके समान ही उनको स्रष्टि भी प्राप्त हो जाती है। जब वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर खुशी होकर हमें वैसी स्थिति प्रदान करता है तब पिछले प्रकारकी मुक्ति अनिवार्य हो जाती है। पर तब हम मुक्ति पानेके बाद विशुद्ध प्रेमसे श्रीभगवान्की सेवा करते हैं। प्रथम श्रेणीकी मुक्तिको भक्त लोग स्वीकार ही नहीं करते और उसे अग्राह्य मानते हैं। कारण यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त—श्री भगवद् प्रीतिकी भावनाको ही समाप्त कर देती है। दूसरे प्रकार की मुक्ति भी जीवनका चरम उद्देश्य नहीं माना जा सकता कारण यह आत्माकी परिस्थितियोंके अनुसार एक मध्यस्थका काम करती है। इसमें श्रीभगवद्प्रीति ही चरम लक्ष्यकी तरह कार्य करती है। अतः मुक्तिको अपनी आध्यात्मिक दासतासे मुक्ति पानेका एक माध्यम मानना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं मानते हैं तो इसका परिणाम यही होता है कि, मुक्ति पाने की होड़ हमारे आध्यात्मिक क्रम विकाशको ही नष्ट कर देती है। हमारा आध्यात्मिक चरम लक्ष्य भक्तिकी उपलब्धि करना है। मुक्तिकी अभिलाषा हमें अपने इस चरम लक्ष्यसे दूर कर देती है और एक दूसरी ही वस्तुकी प्राप्तिके लिये हममें प्रबल इच्छाका उद्भव करती है। यह एक प्रकारसे स्वार्थ साधनकी भावना है। इससे विशुद्ध भक्तिकी निस्वार्थ भावनाका सामंजस्य नहीं है। अतः मुक्ति (अपने सुख भोगोंकी भावना) और

मुक्ति (मोक्षकी भावना) दोनों विवादास्पद सिद्धान्तोंसे सदैव स्वतन्त्र रहकर हमें भक्तिकी उपलब्धि के लिये सतत प्रयत्नशील बनना चाहिये । हमको इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण पर ही बिलकुल निर्भर रहना चाहिये । वे अपनी खुशीसे हमें मुक्ति दें या न दें । हमें तो उनसे अपनी धार्मिक भावनाके निरन्तर विकाशके लिये निवेदन करना चाहिये । हमारे अपने अस्तित्व का चरम लक्ष्य विशुद्ध प्रेम या प्रीति है ।

रति, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं श्रीकृष्णके प्रति विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेमका सिद्धान्त है । जब इसमें उल्लासका समन्वय हो जाता है तो यह प्रीतिमें परिणत हो जाती है । प्रीति श्रीकृष्णमें अनन्य प्रेमका उद्भव करती है और कृष्ण और उनके सम्पर्कको छोड़ कर बाकी समस्त वस्तुओं एवं व्यक्तियोंसे हमारे सम्पर्कको छुड़ा देती है । जब प्रीतिके साथ इस भावनाका संयोग हो जाता है कि, श्रीकृष्ण ही हमारे अपने हैं तो यह प्रेम का रूप धारण कर लेती है । यहीसे इस भावनाका उद्भव होता है कि, ईश्वर हमारे अपने प्रभु हैं और हम उसके सेवक हैं । प्रेमके साथ विश्वासका जब संयोग हो जाता है तब वह प्रणय कहा जाता है । इस अवस्थाके प्राप्त होनेपर श्रीकृष्णके साथ मैत्रीका सम्पर्क स्थापित होने लगता है । प्रणयमें सम्मानकी भावनाका लोप हो जाता है । प्रणयके साथ इस भावनाका कि, कृष्ण ही हमारे प्रेमके प्रियतम लक्ष्य हैं और वे हमारे अपने हैं—दूसरा कोई हमारा अपना नहीं है, जब संयोग हो जाता है

तब एकाएक वह मानका रूप धारण कर लेता है। श्रीकृष्ण अपनी समस्त विशालता और शक्तियोंके रहते हुए भी इस मानके समक्ष एक प्रकार से झुक ही पड़ते हैं। जब हृदय प्रणयसे अभिभूत होकर अत्यन्त आर्द्र हो उठता है—तब प्रेम स्नेहमें परिणत हो जाता है। यहींसे श्रीकृष्ण और भक्तका पिता-पुत्र जैसा सम्पर्क प्रारम्भ होता है। इसका सारांश यह है कि, जिस प्रकार पिता अपने पुत्रके समस्त भरण-पोषण, लालन पालन, सुख दुःख, आदिका भार वहन करते हुए उसके कल्याणके लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने भक्तोंके योगक्षेम निर्वाहार्थ सतत प्रयत्नशील हो पड़ते हैं। जब इस प्रकारकी स्थिति आ जाती है तो श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त रुदन, उनसे सम्पर्क स्थापित करनेकी प्रबल उत्कण्ठा और श्रीकृष्णके ही स्वार्थोंकी निगरानी करनेकी प्रबल इच्छा स्वाभाविक रूपमें बढ़ने लग जाती है। जब स्नेहके साथ इस उत्कट अभिलाषाका संयोग हो जाता है तो रागकी उत्पत्ति हो जाती है। इस स्थितिमें एक क्षणका भी वियोग असह्य हो उठता है। यहींसे श्रीकृष्ण और भक्तमें पति-पत्नी सा सम्पर्क प्रारम्भ होने लगता है। सारांश यह है कि, जिस प्रकार पत्नी अपने पतिको पानेके लिये पागल हो उठती है उसी प्रकार भक्त भी अपने आराध्य श्रीकृष्णको पानेके लिये पागल हो उठता है। राग प्रत्येक क्षण अपने लक्ष्यको नवीन रूपमें देखने लगता है और वह स्वयं भी प्रति क्षण नवीन दिखाई पड़ने लगता है—तब राग अनुरागमें

परिणत हो जाता है। इसमें एक दूसरे पर निर्भर रहना एवं सर्वत्र, सब समय और समस्त परिस्थितियोंमें अपने प्रियतमके साथ रहनेकी भावनायें उत्पन्न होती हैं। यह अनुराग जब क्रमशः वृद्धि होते होते पागलपनकी स्थिति पर पहुँच जाता है तब महाभावके रूपमें इसे मान्यता प्राप्त होती है। यह अवर्णनीय है। रतिसे महाभाव तक का सारा सिद्धान्त स्थायी भाव कहा जाता है। जब इस स्थायी भावमें विभाव, अनुभाव, सात्विक और संचारी भावोंका समन्वय हो जाता है तब श्रीकृष्ण-प्रेम रस की संज्ञाको प्राप्त होता है।

मानव जीवनमें हम इस श्रेष्ठ रसका विकृत रूप पाते हैं। यद्यपि मानव जीवन मायासे आवद्ध है—जकड़ा हुआ है—मायाके वशीभूत है, फिर भी वह आध्यात्मिक जीवनका विकृत स्वरूप ही है। जब आत्मा अपने यथार्थ चरम लक्ष्य आध्यात्मिक आराध्य देव श्रीकृष्णकी ही ओर झुकने लगती है या अनुधावित होती है तो रस विशुद्ध माना जाता है। पर जब मन और विवेककी धारा किसी गलत लक्ष्यकी ओर प्रवाहित होने लगती है तब रसका पतन हो जाता है और वह घृणित बन जाता है। यह विकृत रस भी साधारणतः मानवको श्रेष्ठ आध्यात्मिक रसकी भावनाके श्रोतका ज्ञान तो कराता ही है। अतः हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि, वे ईश्वर और भौतिकवादके भेदको भली भाँति समझनेके लिये सतत प्रयत्नशील बनें—नहीं तो पतन अनिवार्य है।

जो व्यक्ति किसी ऐसे भक्तके सत्संगमें जिसने ईश्वरानुभूतिको उपलब्ध किया है, विशुद्ध अन्तःकरणसे श्रीमद्भगवतमें वर्णित श्रीकृष्ण नाम, स्वरूप, वृत्ति और लीलाका अध्ययन करते हैं वे ही भक्तिके प्रभावसे इस तत्त्वको समझ पाते हैं। जो व्यक्ति प्रत्येक वस्तुको तर्ककी कसौटी पर कसकर विवेचन करनेके इच्छुक हैं वे ईश्वर सम्बन्धी तत्त्वोंकी यथार्थताको, सत्यको बहुत कम ही उपलब्ध कर पाते हैं कारण ईश्वरके विधानानुसार—तर्क अपनी वर्तमान परिस्थितिमें कभी भी ईश्वरके आध्यात्मिक क्षेत्रकी परिधिमें प्रवेश नहीं कर पाता है।

इस विषयमें इससे अधिक वर्णन करना अनावश्यक है। जहाँतक हमने वर्णन किया है, वहीं तक पहुँचनेका जिनको अवसर प्राप्त हो जायगा, वे आगेके लिये अन्तःकरणसे ही जिज्ञासा करेंगे और सर्वशक्तिमान् सर्वसौन्दर्यमण्डित श्रीकृष्ण उनको ईश्वरानुभूतिकी उपलब्धिके लिये सब प्रकारसे सहायता देंगे और उनको क्रमशः अपनी सीमामें अधिकसे अधिक ऊँचा उठनेकी शक्ति भी प्रदान करेंगे। पर जबतक मानवका चित्त भौतिकवादी विचार धारासे घिरा रहेगा तब तक वह भौतिकवाद और उससे सम्बन्धित पदार्थोंसे कभी भी ऊपर उठनेके मार्गको नहीं प्राप्त कर सकेगा।

वर्तमानकी जैसी स्थिति है उसमें विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि मानवके सिद्धान्तोंके तीन प्रकार है—(१) पहला सिद्धान्त 'स्थूल' है—जो मानवके अपने शरीरसे ही सम्बन्धित

है। (२) दूसरा सिद्धान्त लिंग सिद्धान्त है। यह स्थूलसे अधिक संस्कृत एवं परिष्कृत सिद्धान्त है। यह मन, ध्यान, युक्ति और विकृत आत्माके रूपमें प्रकट होता है और इसीसे अनुप्रेरित होकर मानव अपनेको इस भौतिक जगत्में आवद्ध रखता है—लिप्त रखता है। यह मायाके प्रभावसे होता है। माया सुख भोग करनेकी गलत अभिलाषासे आत्माका सुधार करनेके लिये ऐसा करती है। आत्मा जब यह भूल बैठती है कि, वह श्रीभगवान्की सेविका है—तब माया उस पर आक्रमण कर देती है और उसको अपने यथार्थ मार्ग पर लानेके लिये सतत प्रयत्न करती है। (३) तीसरा सिद्धान्त यह है कि, मानव माया और उसके सम्पर्कसे विलकुल स्वतंत्र है।

वर्तमान परिस्थितियोंसे, कठिनाइयोंसे, दुःखोंसे मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय है विशुद्ध भक्त द्वारा प्रेरणा लेकर विशुद्ध भक्तिका अनुशीलन। भक्ति ही एक ऐसा साधन है जो मानव को सर्वसौन्दर्यपूर्ण श्रीकृष्णके निकट सम्पर्कमें ले जाता है और साथ ही उसमें अलौकिक, सनातन और अविचलित श्रीकृष्ण-प्रेमको चिर स्थायी बनाये रखता है।

इस मायासे परिपूर्ण संसारमें मानवको श्रीभगवत् सेवाके उद्देश्यसे शान्तिपूर्वक अपना जीवन बिताना चाहिये। समाजमें उसे पवित्र जीवनका आदर्श स्थापित करना चाहिये। समस्त पापोंको त्याग कर उसे अपते द्वारा जितनी भी हो सके लोगोंकी भलाई करनी चाहिये। जीवनके समस्त संकटोंको वीरताके साथ

सहन करते हुए मानवको अत्यन्त विनम्र बनना चाहिये । अपनी किसी महत्ता या उपकारके लिये कभी भी अहंकार नहीं करना चाहिये और प्रत्येक व्यक्तिको उसके उपयुक्त सम्मान प्रदान करना चाहिये । शान्त और धार्मिक जीवन यापनके लिये एवं श्री भगवान्के सेवकोंको जन्म देनेके लिये विवाह करके गृहस्थाश्रममें निवास करना वैष्णवोंके लिये अच्छा है पर उनको इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिये कि, आध्यात्मिक विकास करना ही जीवनका प्रमुख ध्येय है । उन सभी कार्योंको करना चाहिए जो इसमें सहायता दें और जिन कार्योंसे आध्यात्मिक विकासमें बाधा उपस्थित होती हो, उन समस्त कर्मोंको त्याग देना चाहिये । इस बात पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि, भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं—दूसरा कोई नहीं । उनको ही अपना एकमात्र अभिभावक समझना चाहिए । उन सभी कार्योंको करते रहना चाहिये जिनके विषयमें यह समझते हो कि, भगवान् श्रीकृष्ण अपनी इच्छासे यह तुम्हारे द्वारा करा रहे हैं । इस बातकी कभी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये कि, तुम श्रीकृष्णकी पवित्र इच्छाके विपरीत अपनी स्वतंत्र इच्छासे किसी कामको कर रहे हो । अपने सभी कार्योंको विनम्रताके साथ करते रहना चाहिए । इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि, इस संसारमें तुम प्रवासीके रूपमें अल्प समयके लिये ही निवास करनेके लिये आये हो । तुमको हर समय अपने यथार्थ घरकी ओर रवाना होनेके लिये प्रस्तुत

रहना चाहिये । जीवनके चरम लक्ष्य कृष्ण-प्रेमकी प्राप्तिके लिये अपने कर्तव्य पालनके साथ-साथ भक्तिकी साधनामें लगे रहो । श्री भगवत् सेवामें अपने तन, मन और प्राणोंको तल्लीन रखो । अपने समस्त कार्योंके माध्यमसे अपने श्री भगवान्की पूजा करते रहो ।

उपसंहार

हमने श्री महाप्रभुके जीवन और सिद्धान्तोंके विषयमें संक्षेप में जितना लिखा जा सके लिखनेका प्रयास किया है । हमारे सहृदय पाठक अब यह समझ सकेंगे कि, श्री चैतन्य महाप्रभुने विशुद्ध एकेश्वरवादी सिद्धांतका ही प्रचार किया है और पौत्तलिकताका विरोध किया है । हमने यहाँ यह स्पष्टरूपसे प्रमाणित किया है कि, श्री महाप्रभुने श्री मूर्ति पूजा और पौत्तलिकता के भेदको बड़े ही सुन्दर ढङ्गसे समझानेका सत्प्रयत्न किया है । वे हमें यह स्पष्ट रूपसे बताते हैं कि, पौत्तलिकता वस्तुओं और व्यक्तियोंकी पूजाका नाम है, वह स्वयं ईश्वरकी पूजा नहीं है । जब बनारसके सन्यासियोंने उनको सर्वशक्तिमान् ईश्वरके रूपमें सम्बोधित किया तब श्री महाप्रभुने उनसे कहा कि, किसी जीवको ईश्वरके समान बताते हुए सम्बोधित करना सबसे बड़े पापोंमेंसे एक है । इसके अलावा उन्होंने अपने जीवनमें कितनी ही प्रतिमाओं एवं चित्रोंकी पूजा करनेसे अस्वीकार कर दिया । वे यथार्थ श्रीमूर्तिकी ही पूजाके समर्थक थे । 'ईश्वर एक है, उसके

समान दूसरा नहीं है । उनके साथ प्रतिद्वन्द्विता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ।' श्री महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्मका यही सारांश है ।

यह स्पष्ट रूपसे समझा जा सकता है कि, श्री महाप्रभुने किसी भी धर्मका प्रचार स्वयं आचरित करके किया है । उन्होंने सिर्फ उपदेश ही नहीं दिये । उनके अनुसार स्वयं चलनेका प्रयत्न किया है । उन्होंने आध्यात्मिक विकासके प्रमुख सहचर के रूपमें विशुद्ध नैतिकताका इस संसारमें प्रचार किया । भक्तका जीवन नैतिकतासे पूर्ण होनेसे ही उसका विकास हो सकता है और उसे भगवत् सेवा का अधिकारी बनाता है । जो व्यक्ति अपनेको श्रीकृष्णका भक्त बतलाते हैं और उनके चरित्रमें सदाचार और नैतिकता नहीं है तो उनकी यथार्थतामें सन्देहकी भावना उपस्थित हो जाती है ।

चार प्रकारकी दार्शनिक विचारधारार्यें प्रमुख रूपसे इस विश्वमें प्रचलित हैं—(१) नास्तिकवाद (Atheistic) (२) अद्वैतवाद (Pantheistic) (३) निरपेक्षवाद (Indifferent) और (४) आस्तिकवाद (Theistic) । श्री चैतन्यकी विचारधारामें धर्म विरोधी होनेके कारण प्रथम तीन विचार धाराओं के लिये कोई भी स्थान नहीं है । श्री महाप्रभुने एकमात्र विशुद्ध आस्तिकवादका ही प्रचार किया है और मानवको अन्य तीनों विचारधारार्योंको त्याग देनेका उपदेश दिया है ।

श्री महाप्रभुने इस बातका प्रचार किया है कि, वर्णाश्रम

धर्म एवं उसमें वर्णित जातिभेद ऋषियों द्वारा प्रचारित समाज-कल्याण साधक सामाजिक धर्म है। जब तक यह आध्यात्मिक विकासमें बाधक नहीं होता है तब तक इसे प्रचलित रहने देना चाहिये। श्री महाप्रभुने श्री प्रद्युम्न मिश्र जैसे कट्टर ब्राह्मणको अध्यात्मकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये रामानन्द रायके पास भेजा। इस व्यवहारसे श्री महाप्रभुने स्पष्ट रूपसे यह समझाने का प्रयास किया है कि, जो श्रीकृष्ण-तत्वके ज्ञाता हैं वे ही गुरु हो सकते हैं, चाहे शूद्र हों, ब्राह्मण हों या सन्यासी हों।

आध्यात्मिक विकासके लिये उन्होंने मानव-मानवमें साम्य का प्रचार किया है। वे विश्वबन्धुत्वकी भावनाके प्रचारके साथ-साथ वैष्णवोंमें विशेष भ्रातृत्वके विचारके हिमायती थे। उनकी विचारधारासे वैष्णव आध्यात्मिक विकासके यथार्थ पथ-प्रदर्शक हैं। उन्होंने यह भी प्रचारित किया कि, मानवकी विचारधाराको कभी भी साम्प्रदायिक विचारधारासे विशृंखलित नहीं होने देना चाहिये। वे हमें यह भी शिक्षा देते हैं कि, मानवको सत्पथपर चलते हुए धनार्जन करना चाहिये। उनको अपने आर्थिक व्यवहारोंमें दूसरों एवं अपने मालिकोंके साथ पूर्ण सत्यका व्यवहार करना चाहिये। किसी भी कुमार्गसे या असत् व्यवहारसे धनार्जन नहीं करना चाहिये। रामानन्द राय के भाष्योंमेंसे गोपीनाथ पट्टनायक को जब उसके असत् व्यवहारके लिये राजा द्वारा दण्डित किया जा रहा था तब महाप्रभुने उन सभी व्यक्तियोंको अपने सांसारिक व्यवहारमें नैतिक

रहनेका आदेश दिया था जो उनके मुकदमेकी पैरवी कर रहे थे ।

अपने प्राथमिक जीवनमें उन्होंने गृहस्थोंको यही उपदेश दिया कि, वे निस्सहाय और सहायताके उपयुक्त व्यक्तियोंको सब प्रकारकी सहायता दें । उन्होंने यह भी शिक्षा दी कि, जिनके पास वैसा करनेका साधन हो, उनको जनसाधारण विशेषतः उन ब्राह्मणोंकी शिक्षाकी व्यवस्थामें सहायता करनी चाहिये जो मानव विज्ञानके उच्चतम विषयोंके अध्ययनकी भावना रखते हों ।

श्री महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म सार्वभौमिक है । वह निषेधात्मक धर्म नहीं है । इसे ज्ञानी-से-ज्ञानी और महान् अज्ञानी दोनों ही ग्रहण कर सकते हैं । विद्वान् व्यक्ति सम्बन्ध तत्त्वके ज्ञानके साथ इसे स्वीकार करेंगे और जिनको ज्ञान नहीं है, वे विशुद्ध बैष्णवोंके सत्संग द्वारा सिर्फ श्रीभगवन्नामका उच्चारण करके इसे प्राप्त कर लेंगे । श्रीसंकीर्तनका सिद्धान्त ही भावी विश्वके मानवके लिये महामिलनका भव्य मन्दिर होगा—संकीर्तनके माध्यमसे ही समस्त विश्वके प्राणी एक दूसरेसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित होंगे—विश्वबन्धुत्वकी भावनाको प्रेरणा मिलेगी । संकीर्तनके माध्यमसे अपने-अपने आध्यात्मिक विकास के उच्चतम स्तरपर पहुँचनेके लिये बिना किसी जातिभेद, सम्प्रदायभेद, धर्मभेद, देशभेद, रंगभेद एवं विचारभेदके संसारके समस्त श्रेणियोंके व्यक्ति एकताके सूत्रमें आवद्ध हो सकेंगे । ऐसा प्रतीत होता है कि, संकीर्तन-मन्दिर क्रमशः सारे संसारमें

व्यापक रूपसे स्थापित होंगे और उन समस्त साम्प्रदायिक प्रतिष्ठानोंका अधिकार ग्रहण कर लेंगे जो अन्य धर्मावलम्बियों को अपने निर्धारित क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी अनुमति नहीं प्रदान करते। समस्त गिर्जे, मस्जिदें और मन्दिर जिनके द्वार भगवत् प्रेमके वास्तविक अधिकारियोंके लिये बन्द हैं—वे इन संकीर्तन-मन्दिरोंकी स्थापनासे अपने वास्तविक पथका निदर्शन प्राप्त करेंगे।

श्री चैतन्यने धर्मशिक्षकके रूपमें मानवको दोनों प्रकारसे शिक्षा दी है—उपदेशोंसे एवं अपने पवित्र जीवनसे। उनके जीवनमें एक भी ऐसा कार्य या विचार नहीं है जिसे आलोचना का विषय बनाया जा सके। कितने ही व्यक्तियोंने उनके सन्यास, छोटे हरिदासके प्रति उनके कठोर व्यवहार आदि कितने ही कार्योंको गलत बतलानेका प्रयास किया है। पर जहाँ तक हम समझते हैं, सोचते हैं एवं अन्य सभी निरपेक्ष व्यक्ति सोचते हैं उनके विचार या तो साम्प्रदायिक भावनासे ओतप्रोत हैं या वे बिना किसी पूर्ण विचारके शीघ्रतामें व्यक्त किये गये हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये अदमनीय वीर पुरुष थे। कितने ही ईर्ष्यालु ब्राह्मणोंने जब उनसे यह कहा कि, बादशाह उनके विरुद्ध एक सेना ही भेज रहे हैं तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे यही उत्तर दिया कि, वे तो स्वयं यही चाहते हैं कि, बादशाहको अपने कार्यके वास्तविक परिणामोंको ध्यानमें रखते हुए ऐसा करना चाहिये। वे प्रत्येक व्यक्तिके साथ सौहार्द

का व्यवहार रखते थे पर अपने कर्त्तव्यके पालनमें बड़े कठोर थे। श्री महाप्रभुके गुरु केशव भारतीके भ्राता ब्रह्मानन्द भारती बाघाम्बर धारण करके उनके सामने उपस्थित हुए। उन्होंने जब तक वे बाघाम्बरका परित्याग नहीं कर देते उनको नमस्कार करनेसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट रूपसे यह कह दिया कि, 'जब तक वे कौपीन और बहिर्वास नहीं धारण कर लेंगे तब तक उनको प्रणाम नहीं करूँगा।' उन्होंने कहा कि, जो व्यक्ति मेरे सामने हैं, वह भारती नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि, मेरे गुरुदेव बाघकी खालको पहन लें। सन्यासियों को अपने उपयोगमें लानेके लिये पशुओंके बधका कभी भी समर्थन नहीं करना चाहिये। भारतीने जब यह समझ लिया कि, श्री चैतन्य इस बाघाम्बरको श्रेष्ठ नहीं मानते हैं तब उन्होंने अपने परिधानमें परिवर्तन कर लिया। उनको अपने यथार्थ परिवेशमें देखकर श्रीचैतन्यने अपने गुरुदेवके भ्राताको यथोचित रूपमें प्रणाम किया।

श्री चैतन्यने अपने शिष्योंको यह उपदेश दिया कि, वे शास्त्रोंके शब्दोंकी व्याख्यामें ही तन्मय न रहकर उनके भावों को हृदयङ्गम करनेके लिये प्रयत्नशील हों। पण्डित देवानन्द श्री भागवतका पाठ किया करते थे पर भक्तिके तत्वको हृदयङ्गम नहीं कर पाते थे। जब उन्होंने भक्तिके तत्वको समझ लिया तब श्री चैतन्यने उनका आर्लिगन किया और पण्डितको अपने पिछले कार्योंके लिये पूर्ण रूपसे क्षमा कर दिया।

श्री चैतन्य अपने सारे जीवनमें सदा प्रफुल्लित रहे। वे लोगों से बड़ा ही मधुर परिहास किया करते थे। सुप्रसिद्ध पण्डित वल्लभ भट्टने श्री भागवतकी एक विस्तृत टीका लिखी और श्री महाप्रभुको उसे देखनेके लिये देते हुए कहा कि, वे स्वामी (श्रीधर स्वामी) की व्याख्याको स्वीकार नहीं कर सकते। श्री महाप्रभुको श्रीधर स्वामीके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कटुताकी बात कहना बुरा लगा। अतः उन्होंने श्री वल्लभ भट्टको यह उत्तर दिया कि, उनका यह आचरण उसी प्रकारका है जिस प्रकार एक दुश्चरित्रा स्त्री अपने स्वामीकी अवहेलना किया करती है। इस चुभते हुए व्यंगने पंडित महोदयको अपनी भूलका दिग्दर्शन करा दिया और उन्होंने भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामीके विषयमें इस प्रकारकी उक्ति व्यक्त करना सदाके लिये त्याग दिया।

हमने इस छोटेसे ग्रन्थमें श्री महाप्रभुके जीवन और उनकी विचारधाराको संक्षेपमें यथाशक्ति यथार्थ रूपमें रखनेका प्रयास किया है। श्री चैतन्यके सेवक होनेके नाते हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि, हम श्री चैतन्यके उच्चादर्शोंका प्रचार करें। अपने कर्तव्यका पालन करते हुए उसमें त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। हम सुधीजनों और श्रीकृष्ण-सेवकोंसे यह विनम्र निवेदन करते हैं कि, वे हमें अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा प्रदानकर अनुगृहित करें।

श्रीमहाप्रभुको जन्मभूमि—श्रीमायापुर

संक्षिप्त परिचय

श्री मायापुर (नदिया) को बंगालका वृन्दावन कहा जाता है। यह पश्चिम बंगाल राज्यमें ही नहीं सारे पूर्वीय भारतमें वैष्णवधर्मका प्रमुख केन्द्र है। यह स्थान कलकत्तेसे प्रायः ७० मीलकी दूरी पर है। कलकत्तेसे यहाँ तक पक्की सड़क बनी हुई है। मोटर द्वारा आसानीसे यहाँ पहुंचा जा सकता है। स्याल्दह स्टेशनसे नवद्वीप घाट तक दिन-रात ट्रेनोंकी सुविधा उपलब्ध है।

इस स्थानका अपना राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास है। एक समय यह स्थान जनसंकुल नदिया का हृदयस्थल था। यहीं पर शकाब्द १४०७ फाल्गुण मासकी २३ तारीख तदनुसार ईस्वी सन् १४८६ की १८ फरवरीको श्री भगवान् कृष्णके प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ था। यह नगर प्राचीन भारतके 'विश्वविद्यालय नगरों' में एक था। यहाँ देशके प्रत्येक अंचलसे विद्याध्ययनके लिये विद्यार्थी आया करते थे। इसकी कीर्तिगाथासे आकर्षित होकर सुप्रसिद्ध विद्वान् भी यहाँ बराबर आते रहते थे। श्री महाप्रभुने इसी पवित्र धरतीपर अपनी संकीर्तन-जाह्नवीके पवित्र सलिल में समस्त प्राणियोंको अवगाहन कराया था।

इस स्थानके ऐतिहासिक महत्वमें अभी तक किसी प्रकारकी कमी नहीं आई है। आज भी यदि पुरातत्व विभाग यहाँ खुदाईका कार्य आरंभ करे तो बंगालके हिन्दू साम्राज्यके अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्यों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़नेकी संभावनाएँ हैं। यहाँ पर अवस्थित बल्लालदीघी और बल्लालटीलेके ध्वंसावशेष अपनी ऐतिहासिकताको जोरोंसे घोषित करते दिखाई पड़ते हैं। ऐसा कहा जाता है कि, सन् १०६३ में राजा लक्ष्मणसेनने इसे बसाया और इसे सेन राजवंशकी राजधानी बनाया।

नवद्वीप

नवद्वीपका निर्माण नौ द्वीपोंके समन्वयसे हुआ है। इन नव द्वीपोंमेंसे चार द्वीप भागीरथीके पूर्वमें और पांच उसके पश्चिममें अवस्थित हैं। पूर्वीय तटके द्वीपोंके नाम हैं—अन्त-द्वीप, सीमन्त द्वीप, गोद्रुम द्वीप, मध्य द्वीप। पश्चिम तटवर्ती द्वीपोंके नाम हैं—कोल द्वीप, ऋतु द्वीप, जहू द्वीप, मोदद्रुम द्वीप और रुद्र द्वीप। इन नौ द्वीपोंके स्मृति-चिह्न और ऐतिहासिक ध्वंसावशेष अद्यावधि वर्तमान हैं और अपने अनुसंधानके लिये भारतके सुधीजनोंके अध्यवसायकी प्रतीक्षा करते हैं।

भारतका मुस्लिम शासनकाल हिन्दू धर्मके लिये बड़ा ही संक्रमण काल था। भारतकी राजनीतिमें लगातार चार शताब्दियों तक भयंकर ववण्डर चलता रहा, जिसके कारण सारे देश, प्रत्येक गाँव और देशकी समाज नीति, धर्म नीति एवं कर्मक्षेत्रमें

सांघातिक परिवर्तन हुए। भारतका जनसाधारण पथ भ्रष्ट, दिशा भ्रष्टः, यतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः हो गया। इसी तूफानी बवण्डरमें श्री चैतन्य महाप्रभुके वैष्णववादके सिद्धान्तोंको भी बड़ा आघात लगा।

पर यह सनातन नियम रहा है कि, भारतकी प्राचीन संस्कृति और धर्म सदा अमर रहता आया है—उसमें अमृतकी संजीवनी सनातनसे अन्तर्निहित रहो है।

‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥’

श्री भगवान्की इस प्रतिज्ञाके अनुसार भारतीय संस्कृति और धर्मकी रक्षाके लिये इस पवित्र भारत भूमिपर श्री भगवान् का अनंत बार आविर्भाव हुआ और उनके द्वारा बराबर ही धर्मप्रचारार्थ समय समय पर पार्षदोंको भेजा जाता रहा है। इसी सनातन नियमके कारण उन्नीसवीं शताब्दिके प्रारम्भमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने इस भारतभूमि पर उत्तीर्ण होकर वैष्णवधर्मके प्रचार-कार्यको अपने हाथोंमें लिया। उन्होंने ही श्री भागीरथीके पूर्वीय तट पर अवस्थित श्री महाप्रभुकी जन्म-भूमि श्री मायापुरका अन्वेषण और पुनरुद्धार किया। उनका तिरोभाव सन् १६१४ में हो गया। उनके बाद परमहंस

श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने श्री मायापुरकी उन्नति एवं चैतन्य मठकी प्रतिष्ठा करनेका सफल प्रयास किया। श्री प्रभुपादने श्री चैतन्य मठमें ही एक विशाल और भव्य मंदिरका निर्माण करवाया। इसके साथ साथ उन्होंने चांद काजी की समाधि, श्री श्रीवास अंगन एवं श्री अद्वैत भवनका भी निर्माण कराया। इसके अलावा उन्होंने कितने ही धार्मिक स्थानोंका पुनरुद्धार और पुनर्निर्माण करानेका सतत प्रयत्न किया।

इस समय श्री मायापुरके चैतन्य मठ और भारत एवं पाकिस्तानमें स्थापित विभिन्न शाखा गौड़ीय मठोंके अध्यक्ष आचार्य त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद् भक्तिविलास तीर्थ महाराज हैं। उनके उच्च आध्यात्मिक आदर्श, गंभीर अध्ययन एवं संगठनकी अलौकिक शक्तिने सारे भारतमें श्री चैतन्य मठके अन्तर्गत ६४ मठ एवं मन्दिरोंको समन्वित कर दिया है। उनके आध्यात्मिक विचारोंसे अभिभूत होकर शत शत महानुभावोंने श्री महाप्रभुके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये अपनी सारी सेवायें इस प्रतिष्ठानको समर्पित कर दी हैं। इनके सुयोग्य संरक्षण और देखभालमें श्री मायापुरके मठों और मंदिरोंमें कितनेही विकासकार्य हुए। भारतके विभिन्न स्थानोंमें इन्होंने कितने ही मंदिरों एवं प्रचार-केन्द्रोंकी स्थापना की और इस तरह श्री महाप्रभुके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके साथ साथ श्री चैतन्य मठकी यथेष्ट श्रीवृद्धि की।

श्री मायापुरके विशिष्ट धार्मिक स्थान

श्री मायापुरके कुछ विशिष्ट धार्मिक स्थानोंका संक्षिप्त परिचय यह है—

(१) श्री योगपीठ—श्री चैतन्यमहाप्रभुका जन्म स्थान—इसी स्थानपर श्री महाप्रभुके पिता जगन्नाथ मिश्र का भवन था। श्री पुरन्दर मिश्र इसी स्थानमें श्री विष्णु पूजा और अतिथि सेवा किया करते थे। यहीं पर श्री विश्वम्भरने अपने शैशवके चमत्कारोंसे नदियावासियोंको मुग्ध किया। यहाँ पर अवस्थित नीम वृक्ष पाँच सौ वर्षोंसे उनकी स्मृतिको संजोये हरा भरा खड़ा है। सघन तुलती वन भी यहाँ पर वर्तमान है।

(२) श्री क्षेयपाल शिव और गोपेश्वर शिव

(३) श्री नृसिंहदेवका मन्दिर

(४) श्री गौरकुण्ड

(५) श्री महाप्रभुका घाट

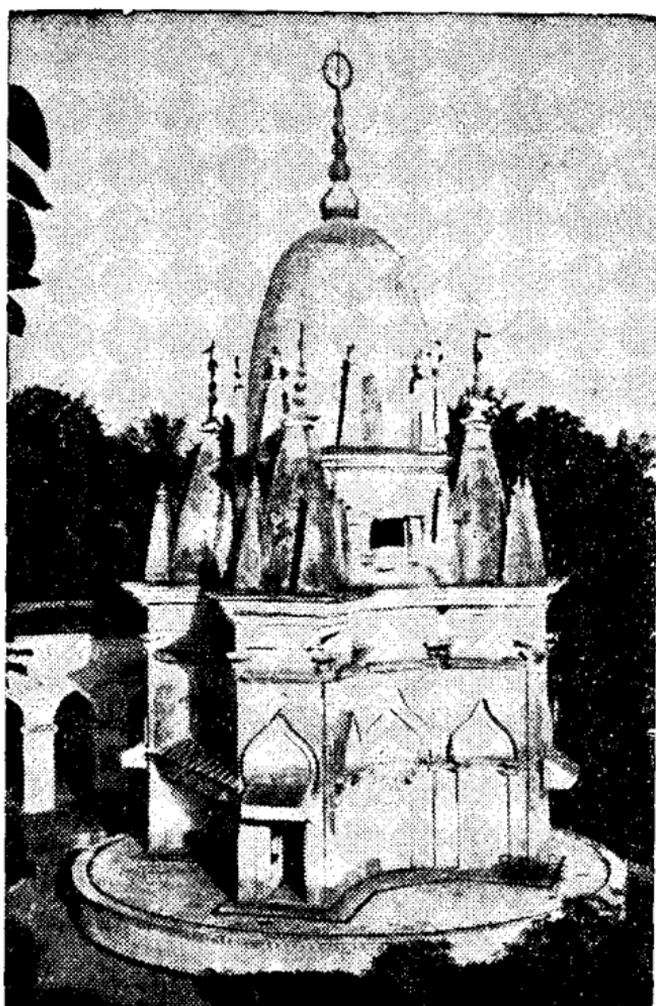
(६) श्री माधाईका घाट

(७) श्री बारकोना घाट

(८) नागरिया घाट

(९) गंगानगर

(१०) खोलभांगार-डांगा—इसी स्थान पर चांद काजीने मृदंग को तोड़ फोड़ डाला था। अब तक इस स्थानका नाम 'खोलभांगार डांगा' के नामसे विख्यात है।



श्री चैतन्य वाणीके प्रचारका प्रमुख केन्द्र श्री चैतन्यमठ का मन्दिर यहाँ वैष्णवोंके चार प्रमुख सम्प्रदायोंके संस्थापकोंकी नित्य पूजा होती है। यह २६ शिखरोंका मन्दिर है। इसमें श्री राधागोविन्द और श्री चैतन्य महाप्रभु की श्रीमूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

(११) श्री श्रीवास अंगन—यह स्थान श्री योगपीठसे २०० गजकी दूरी पर है। श्रीवास अंगन श्री महाप्रभुका संकीर्तन केन्द्र रहा है। श्री वृन्दावनकी रासभूमि और श्री नवद्वीपके श्रीवास अंगनको समान गौरव प्राप्त है।

(१२) श्री अद्वैत भवन—यह श्रीवास अंगनसे प्रायः २० गज की दूरी पर है। यहीं पर आचार्य अद्वैतने श्रीकृष्णकी आराधना की थी। यहीं पर श्रील विश्वरूप, ठाकुर हरिदास, श्रीवास, गंगादास, शुक्लाम्बर, चन्द्रशेखर, मुरारी आदि वैष्णव भक्त समवेत होते थे और श्रीकृष्णयश-गुण-लीलाका संकीर्तन करते थे।

(१३) श्री गदाधर अंगन

(१४) श्री मुरारी गुप्तका भवन

(१५) श्री चन्द्रशेखर भवन

(१६) श्री चैतन्य मठ एवं २६ शिखरोंका मन्दिर

(१७) श्रील गौर किशोरदास बाबाजी महाराजका समाधि-
मन्दिर

(१८) प्रभुपाद श्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीका समाधि
मन्दिर

(१९) श्रीधर अंगन

(२०) श्रीठाकुर भक्ति विनोद इन्स्टीच्यूट

(२१) श्रीठाकुर भक्ति विनोद जूनियर बेसिक स्कूल

(२२) पर विद्यापीठ या सारस्वत तीर्थ

(२३) पर नाट्य मंच

(२४) मठके अंतर्गत एक दातव्य औषधालय भी है जिसे पश्चिम बंगाल सरकारने 'हेल्थ सेण्टर' की मान्यता दी है।

धार्मिक साहित्यका प्रकाशन

वैष्णव सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये श्री चैतन्य मठसे तीन मासिक पत्र बंगला, अंग्रेजी और हिन्दीमें 'गौड़ीय' नामसे प्रकाशित होते हैं। बंगला 'गौड़ीय' श्री मायापुरसे मठके निजी यंत्रालयसे आज १० वर्षोंसे प्रकाशित होता है। अङ्ग्रेजी गौड़ीय मठकी मद्रास शाखासे प्रकाशित किया जाता है। हिन्दी गौड़ीय कलकत्तेके शाखा मठ द्वारा प्रकाशित हुआ करता है।

इन तीनों मासिकपत्रोंके अलावा श्री चैतन्य मठसे बङ्गला और अंग्रेजीमें अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशनकार्य निरन्तर चल रहा है। इस वर्षसे हिन्दीमें भी ग्रन्थ प्रकाशनका कार्य आरम्भ किया गया है। राष्ट्रभाषा हिन्दीमें वैष्णव ग्रंथोंके प्रकाशनसे वैष्णव धर्मके प्रचारके साथ साथ राष्ट्रभाषा की यथेष्ट श्रीवृद्धि भी होगी।

सारे भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अपार वैष्णव साहित्य सृजन हुआ है। श्री चैतन्य मठ को यदि जनसाधारणकी सहानुभूति और उदार सहयोग प्राप्त हुआ तो इस अपार साहित्यको राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित करनेकी योजना पूर्ण हो सकेगी।

इस दिशामें राष्ट्रभाषाके हितैषियों और केन्द्रीय सरकार को श्री चैतन्य मठको पूर्ण सहयोग देना चाहिये । वैष्णव धर्मका साहित्य भण्डार बहुत विशाल है और इसे राष्ट्र-भारतीको समर्पित करने के लिये अजस्र धनराशिकी आवश्यकता है । यह कार्य देशके श्रद्धालु महानुभावोंकी उदार सहायतासे ही सफल हो सकता है । हमारा यह विश्वास है कि, श्रीभगवद्कृपासे श्री चैतन्य मठका यह प्रयास साफल्यमण्डित होगा ।

कलकत्ते में श्री चैतन्य-गवेषणा-मन्दिर की स्थापना

कलकत्ता भारतका प्रमुख केन्द्र है । पश्चिम बङ्गालकी तो यह राजधानी ही है । यहाँ गवेषणाके लिये समस्त साधन उपलब्ध हैं । सारे देशके विभिन्न राज्योंके निवासी यहाँ पर बसते हैं, आते हैं, और सारे बङ्गालमें अपना व्यवसाय चलाते हैं । यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्तोंके प्रचारका केन्द्र होना चाहिये और साथ ही समस्त भारतीय भाषाओंमें व्यापक रूप से लिखित वैष्णव साहित्यकी गवेषणाकी भी नितान्त आवश्यकता है । इन्हीं समस्त उद्देश्योंको लक्ष्यमें रखकर यहाँ 'श्री चैतन्य रिसर्च इन्स्टीच्यूट' या श्री चैतन्य-गवेषणा-मन्दिरकी स्थापनाके लिये श्री चैतन्य मठके अध्यक्ष आचार्य श्रीभक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज सतत प्रयत्न कर रहे हैं । इसके भवन निर्माणके लिये रासबिहारी एवेन्यूकी मोड़के पास भूमि खरीद ली गई है । भवनका शिलान्यास भी भारतीय गणतन्त्रके उप-राष्ट्रपति माननीय डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्के कर कमलोंसे हो

चुका है। अब इसके भवन निर्माण, पुस्तकालय, वाचनालय, मन्दिर निर्माण कार्यको पूरा करनेके लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। आशा है श्रीभगवद् कृपासे निकट भविष्य में ही यह गवेषणा मन्दिर समस्त भारतके वैष्णव विद्वानोंके मिलन-केन्द्रके रूपमें अपनेको गौरवान्वित करनेमें समर्थ होगा।

विनम्र निवेदन

श्री चैतन्य मठके सामने सर्वतोमुखी विकासकी कितनी ही योजनायें हैं। श्री चैतन्य मठके अध्यक्ष पूज्यपाद आचार्य श्रीमद् भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज इन योजनाओंको सफल बनानेके लिये प्रयत्नशील हैं। यद्यपि हमारी यह मान्यता है कि, इस जगत्के सारे कार्य उस परम ऐश्वर्यशाली सर्वशक्तिमान् श्री हरिकी कृपासे ही साफल्यमण्डित हो सकते हैं फिर भी 'निमित्त-मात्रेण भव सव्यसाचिन्' की श्रीकृष्ण-वाणीके अनुसार हमारा देशके सुधीजनों, धनी मानियों एवं सर्वसाधारणसे यह विनम्र निवेदन है कि, वे विश्व कल्याणार्थ श्री चैतन्य वाणीके इस प्रचार कार्यमें श्री चैतन्य मठको तन मन धनसे सहयोग प्रदान करें।

आजके इस भौतिकवादी युगमें भारत ही एक ऐसा पवित्र देश है जो शान्तिके मसीहाके गौरवमय पद पर विराजमान है। देशके प्रत्येक नागरिकका विशेषतः हिन्दू धर्म एवं वैष्णववादके सिद्धान्तोंमें विश्वास रखनेवालों का यह एक प्रमुख कर्तव्य है कि, वे देशके इस गौरवको अक्षुण्ण रखनेके लिये वरावर सचेष्ट

रहें। श्री चैतन्य महाप्रभुके उपदेशों, सिद्धान्तों और विचारोंके प्रचारसे समस्त विश्वको शांति प्राप्त होगी और सारा विश्व अपने कल्याण मार्गकी ओर अग्रसर होगा।

आज हम प्रलयकारी अणुयुगमें निवास करते हैं। मौतकी छाया हमारे बहुत ही निकट आ गई है। संहारका अधिष्ठाता प्रति क्षण ताण्डव नृत्य कर रहा है। युगयुगान्तरोंसे संचित सभ्यता और संस्कृतिके विनाशके लक्षण प्रकट हो रहे हैं। नाशके इस भयंकर आतङ्कका समाधान कहाँ है? इसका समाधान हमारी विशुद्ध आत्मामें हैं। जीवनके वर्तमान दृष्टिकोणोंमें आमूल परिवर्तन लाकर उसे आध्यात्मिकताकी ओर उन्मुख करने का प्रयास करना ही इसका एकमात्र समाधान है। आज विश्व के ईमानदार और चिन्तनशील व्यक्ति जीवनमें आध्यात्मिक विकासकी आवश्यकताका अनुभव करने लगे हैं। हमारे राष्ट्रके प्रधान सचिव पण्डित जवाहरलाल नेहरू तकको यह कहनेके लिये विवश होना पड़ा है कि, “विज्ञानकी उन्नतिकी दौड़में हमें आत्मोन्नतिको ही अधिकसे अधिक प्रश्रय देना होगा।” यह आध्यात्मिकता एकमात्र भक्तिके द्वारा ही प्राप्य है। जहाँ तक स्वार्थका साम्राज्य स्थापित है वहाँ तक भक्ति ही मानवको निष्काम बनानेमें समर्थ हो सकती है। भक्ति ही मानवको दूसरोंके प्रति उदार होनेकी प्रेरणा प्रदान कर सकती है और इसीमें हमारे व्यक्तित्व एवं सामूहिक जीवनकी यथार्थ शान्ति समन्वित है।

इसके लिये मानवकी आत्माको ऊँचा उठाना होगा। अपने जीवनमें सत्यता और विशुद्धता अपनानेके लिये उसका पथ-प्रदर्शन कराना होगा। अपने कार्यों, विचारों एवं आचारमें विशुद्धताका व्यवहार रखना भगवदाराधनकी पहली एवं अनिवार्य शर्त है। जबतक इस शर्तका सारे विश्वमें परिपूर्ण रूपसे प्रतिपालन नहीं होगा तब तक अनन्त कानूनों द्वारा भी मानव मानवमें साम्य की प्रतिष्ठा नहीं की जा सकेगी। अशुद्ध अन्तःकरणसे पाप और अपवित्रतामें लिप्त रहकर भगवदाराधना नहीं हो सकती। प्रत्येक मानव को—जन्म, जाति, धर्म, राज्य, देश, रंग एवं अन्यान्य भेद भावों पर कुछ भी विचार किये बिना भगवदाराधनाका ईश्वर-प्रदत्त पूर्ण अधिकार है। पर शर्त एक ही है कि, यह पूजा विशुद्ध अन्तःकरणसे होनी चाहिये। निर्मलता रहित निर्माल्य श्री भगवान्को स्वोकार्य नहीं है। अपवित्रताके बिना श्री भगवद् पूजा भी श्री भगवान्के प्रति एक अपराध ही माना जायगा। भगवान्की पूजा सिर्फ पुष्पों और चन्दनोंसे ही नहीं की जाती। मायाके विविध आवरणोंसे मुक्त होकर श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन द्वारा भक्तिका अर्घ्य निवेदन करना ही यथार्थ पूजा है।

श्री चैतन्य मठ श्री महाप्रभुके इन्हीं सिद्धान्तोंके प्रचार करने में तल्लीन है। आज हम प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, विश्वास एवं सहानुभूतिसे परिपूर्ण झोली लेकर विश्वके प्रत्येक विवेकशील मानव से श्री चैतन्यमठके विकास कार्योंमें सब प्रकारका सहयोग पाने

के आकांक्षी हैं। आशा है, अपने ही कल्याणके लिये किये जानेवाले विकास कार्यों के लिये श्री चैतन्य मठको सब प्रकारसे सहयोग प्रदान कर देशके नागरिक अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। श्री चैतन्य मठ जो कुछ भी सर्वसाधारणके सहयोगसे करनेमें समर्थ होगा—वह सर्व-जन-हिताय लोक-कल्याणार्थ 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पितम्' के श्रद्धापूर्ण निवेदन के साथ सर्वसाधारणको ही समर्पित होगा।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि, भगवान् आनन्दकन्द सच्चिदानन्द वृन्दावनविहारी प्रत्येक मानवको अपने ही इस महत् कार्यको पूर्ण करनेके लिये सहयोग प्रदान करनेकी प्रेरणा देंगे।

विनीत—

श्री चैतन्यमठका अकिंचन सेवक

वैष्णवदासानुदास

रघुनाथप्रसाद सिंहानिया